॥ श्रीहरिः ॥

पद–रत्नाकर—एक अध्ययन

(नये अप्रकाशित पदों सहित)



श्यामसुन्दर दुजारी

॥ श्रीहरिः॥

नम्र निवेदन

महान् रसग्रन्थ पद-रत्नाकरके अपने आधे अधूरे अध्ययनको आपके सामने रखते हुए मुझे बड़े संकोचका अनुभव हो रहा है। अधूरा इसलिये कि एक तो मैं सर्वथा साहित्य-संगीत-कला विहीन साधारण प्राणी हूँ। दूसरा पद-रत्नाकर एक महान् रस शास्त्र है जिसके अधिकांश पद समाधि-भाषामें लिखे गये हैं। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार इनकी भाषा तो सरल है जिसका शब्दार्थ हिन्दीका एक अच्छा विद्यार्थी भी कर सकता है पर भाव इतने गहन हैं कि जिनकी पूर्णव्याख्या विद्वान् भी बिना भाव-साम्यता प्राप्त हुए साङ्गोपाङ्ग कर दें, इसमें संदेह है। इतना ही नहीं कुछ पदोंके लिये तो पूज्य श्रीभाईजीने कहा था कि इनके एक-एक शब्द श्रीराधारानी एवं रसराज श्रीकृष्णके हैं। जब श्रीकृष्णके अर्जुनको दिये उपदेश गीताकी सात सौ से अधिक टीकाएँ हो गयी हैं और अद्यावधि नयी होती ही जा रही हैं तब श्रीकृष्ण और श्रीराधारानीके एकान्त निकुंजमें आपसके संवादोंकी कितनी व्याख्याएँ हो सकती हैं—इसकी कल्पना ही की जा सकती है। पर महानुभाव अपनी बुद्धिके अनुसार इन पदोंकी व्याख्या करते भी हैं और मेरा विश्वास है कि इनकी सरस व्याख्या युगों-युगों तक होती ही रहेगी। उनसे रस-मार्गके साधकोंका कल्याण ही होगा। पर अपनी अल्पज्ञताके कारण मैंने किसी पदकी व्याख्या नहीं की है। मैंने तो मात्र कुछ संकेत देनेका प्रयास किया है। यदि इसका कुछ उपयोग हो सके तो मेरा सौभाग्य है अन्यथा यह प्रयास केवल स्वान्तः सुखाय है। अथवा इसे मेरी मानसिक विवशता कहा जा सकता है।

पूज्य भाईजीके पद इतने बिखरे हुए हैं कि उनको पूर्णतया एकत्रित करना भी एक अत्यन्त दुष्कर कार्य कहा जा सकता है। यद्यपि पदोंके संग्रहकी कुछ पुस्तकें उनके जीवनकालमें प्रकाशित हो गयी थी पर श्रीभाईजीके नित्य लीलालीन होनेके बाद बहुतसे भाई-बहिनोंके मनमें आ रही थी कि सम्पूर्ण पद एक साथ प्रकाशित हो जायँ। इसकी चर्चा कई वर्षोंतक होती रही पर कार्यकी विशालताकी दृष्टिसे कोई भी बन्धु इसे हाथमें लेनेको तैयार नहीं हुआ। पाँच-छः साल तक यह चर्चाका विषय ही बना रहा। सन् १९७५ के आसपास जब मैं दिल्लीमें था तब श्रीबजरंगलालजी सिंहानिया और श्रीभगवान दासजी सिंहानिया मेरे पास आये। ये दोनों सहोदर भाई थे एवं श्रीभाईजीके अनन्य अनुगत थे। मुझ पर दोनोंका ही अत्यन्त मित्रवत स्नेह था। उम्रमें दोनों ही मुझसे बड़े थे इसलिये मेरा उनके प्रति आदरका भाव था। वे बोले भाईजीके पदोंके संग्रहका काम तुम्हें करना है। इतने वर्ष बीत गये और कोई भी करनेको राजी नहीं हो रहा

है। मैंने नम्रतासे कहा कि यह मेरे वशका काम नहीं है। यह कार्य वही कर सकता है जो बराबर उनके साथ रहा हो। इतनी बिखरी हुई सामग्री मैं कहाँसे एकत्र करूँगा। तब श्रीबजरंगलालजी थोड़े आवेशमें आकर आदेशकी भाषामें जोरसे बोले कि मैं कहता हूँ यह काम तुम्हें ही करना है और कोई करनेको तैयार नहीं हुआ है। अब तुम ना नहीं बोलना। सहयोग हम सभीका पूरा रहेगा। मुझे स्वीकार करना पड़ा और भगवान्का स्मरण करके मैंने कार्य शुरू किया। आज भी मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इतना विस्तृत कार्य कैसे ६-७ महीनेमें पूर्ण हो गया। यह मेरे जीवनमें एक भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष चमत्कार था। यद्यपि सहयोग सभीका था परन्तु विशेषतया मेरे अनुज श्रीहरिकृष्ण एवं श्रीभगवानदासजी सिंहानियाके सहयोगके बिना इतना शीघ्र होना संभव नहीं था। इसका अधिक विस्तार नहीं करके इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि १५१० पदोंका संग्रह 'पद-रत्नाकर' गीताप्रेससे अक्षय तृतीया वि०सं० २०३५ में प्रकाशित हो गया। पदोंके वर्गीकरणमें कई बन्धुओंका विशेष सहयोग रहा। इसके बाद भी पद मिलते ही रहे और दूसरे संस्करणके परिशिष्टमें ४७ पद और जोड़ दिये गये। तीसरे संस्करणमें ८ पद और बढ़ गये। चौथे संस्करणमें किसी कारणवश नये पद बढ़ाये नहीं जा सके। इस पुस्तकमें अभीतक जो पद प्राप्त हुए वे दे दिये गये हैं। ये सभी पद अभी तक अप्रकाशित रहे। अब भी यह नहीं कहा जा सकता कि सारे पद आ गये हैं। पर पद-रत्नाकरके संकलनके बाद मेरी स्थिति एक कूप-मण्डूकके समान है। मेरा मन अब किसी दूसरे पदोंकी तरफ जाता ही नहीं। सभी भावोंके पद इसमें मिल जानेसे अन्यत्र देखनेकी आवश्यकता भी नहीं लगती।

अभी कुछ दिनों पूर्व मैं यह कार्य कर रहा था तब मेरे पास एक सज्जन आये। वे बोले मैंने आपकी पुस्तकें पढ़ी हैं, आप 'पद-रत्नाकर'को सूरसागरके समकक्ष रखनेकी बात लिखते हैं और अन्य विद्वानोंके ऐसे उद्‌गार भी प्रस्तुत करते हैं पर मैं कहता हूँ- अध्ययन यह होना चाहिये कि सूरसागरको पद-रत्नाकरके समकक्ष रखा जा सकता है क्या? मैंने कहा—भाई साहब! आपकी भावनाका मैं आदर करता हूँ और कुछ अंशमें इस बातसे मैं सहमत भी हूँ पर ऐसा मेरा लिखना हास्यापद लगेगा। साहित्य जगत्‌में अभी मान्यता यही है कि **'सूर-सूर तुलसी शशि'।** उन्होंने कहा—**'सूर-सूर तुलसी शशि'** और **'सूर शशी तुलसी रवि'** आदि उक्तियाँ उस समय की है जब पद-रत्नाकरकी रचना नहीं हुई थी। अब पद-रत्नाकरके पदोंका कोई गहराईसे अध्ययन करे तो शायद नयी उक्ति प्रचलित हो जाय। मैंने कहा—यह कार्य तो अधिकारी विद्वानोंके लिये ही रखना श्रेयस्कर है। मेरे जैसे साधारण प्राणीके वशका यह कार्य नहीं है। हाँ इतना मैं मानता हूँ कि तुलसीदासजी, सूरदासजी, मीराबाई, श्रीपोद्दारजी आदि सभी भगवत्प्राप्त संत हैं इसलिये इनकी तुलना करना तो महामूर्खता है पर पद-रत्नाकरके

अनुभूति खंडमें या कुछ श्रीराधा-माधवकी लीला माधुरीके पद अथवा श्रीराधा-माधवके परस्पर संवादके पदोंमें जैसे भाव मिलते हैं वैसे खड़ी बोलीके काव्यमें तो है ही नहीं, व्रजभाषाके पदोंमें भी मुझे इतनी मात्रामें नहीं मिले। अन्य व्रजरसके कवियोंके पदोंमें भगवान्‌के स्वरूप सौन्दर्यका वर्णन अधिक मिलता है। पर यहाँ यह भी देखना आवश्यक है कि तुलसीदासजी, सूरदासजी आदिने केवल काव्य रचना ही की है, श्रीपोद्दारजीके समान दस हजार पृष्ठोंसे अधिकका न गद्य साहित्य दिया है और न विश्वकोषकी तरहके 'कल्याण'के विशेषांक। इस दृष्टिसे निश्चित ही श्रीपोद्दारजीकी हिन्दी साहित्य सेवा अनुपम कही जा सकती है। उन्होंने जगत्‌को क्या दिया इसका पूर्ण आकलन तो कोई कर सके यह संदेहास्पद ही है पर उन्होंने हिन्दी साहित्यकी कितनी वृद्धिकी इस ओर भी हिन्दीके विद्वानों, साहित्यकारों, आलोचकों, इतिहास लेखकोंका ध्यान अभी नहीं गया है। अभी तक तो लगता है कि उनके सारे साहित्यको 'धार्मिक'का लेबल देकर अलग छोड़ दिया जाता है। तभी तो श्रीरामनाथ 'सुमन' जैसे विद्वान् लिखते हैं—''उनके कृतित्वका अधिकांश भाग अतल सागर-गर्भमें बहते हुए 'आइसबर्ग'की भाँति संसारकी दृष्टिसे ओझल है।'' श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास लिखते हैं—''ऐसा लगता है कि इस युगने भाईजीके व्यक्तित्वके हिमालयका पूर्णरूपसे दर्शन नहीं किया।'' डा० तपेश्वरनाथजीका कहना है—''इस रसामृत सिन्धुमें अवगाहन करनेवाले व्यास, नारद और शुकदेव जैसे सिद्ध मुनियोंसे लेकर जयदेव, चण्डीदास, चैतन्य, मीरा, सूरादि जैसे दिव्य साधक सन्त पुराकालमें हुए वैसे ही आधुनिक युगमें इस प्रेमधाराको अनाविल वेग प्रदान करनेवाले रसिक संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हुए।'' पर मेरा विश्वास है कि ऐसा समय अवश्य आयेगा जब इनके कृतित्त्वका मूल्यांकन होगा। हमारा इतिहास भी इस बातका साक्षी है। आज जिस रामचरितमानसकी घर-घरमें पूजा हो रही है, विद्वान्‌से लेकर ग्रामीणतक जिसका विवेचन करते हैं, जिसका अनुवाद अंग्रेजीकी बात ही क्या, रूस और चीन जैसे साम्यवादी देशोंकी भाषामें भी हो गया है, उसको चार सौ वर्ष पूर्व रचनाके समय विद्वानोंने मान्यता तक नहीं दी थी। पूज्य राधाबाबा जैसे संतने भी कहा था कि ऐसा समय अवश्य आयेगा जब मानसकी तरह श्रीपोद्दार महाराजके पदोंका घर-घरमें प्रचार होगा।

पूज्य राधाबाबाने लगभग ६०-६२ वर्ष पूर्व मेरे पिताजीको कहा था कि श्रीपोद्दारजीके रचित २०० व्रजरसके पद मिल जायँ तो मैं उनकी ऐसी जीवनी तैयार कर सकता हूँ जो अनन्तकालतक जीवोंका अशेष कल्याण करती रहेगी। पर उस समय ऐसे पद उपलब्ध नहीं थे। ऐसे अधिकांश पदोंकी रचना सन् १९५५ के बाद ही हुई। लगभग २० वर्ष पहले एक दिन पूज्यबाबा मुझसे बड़े स्नेहसे बात कर रहे थे तो मैंने उस बातको याद दिलाते हुए कहा कि अब तो पूज्य भाईजीके ऐसे ८०० से अधिक पद उपलब्ध हैं। पूज्य बाबा बोले—ऐसी जीवनी पढ़नेका पात्र कौन है? अब इसका

उत्तर तो मैं क्या देता? एक उत्तर मनमें उभरा कि जब आपने यह बात कही थी, उस समय जो पात्र थे वे सब अभी मरे तो नहीं हैं। पर श्रद्धावश मेरा साहस नहीं हुआ और बात वहीं रह गयी। पर आज भी ऐसी मेरी श्रद्धा है कि कोई भाव-साम्यता प्राप्त अधिकारी विद्वान् पद-रत्नाकरके आधारपर पूज्य भाईजीकी जीवनी तैयार करे तो वह एक दिव्य वस्तु अवश्य होगी। मेरे वशका यह कार्य कदापि नहीं है। मैं इस विषयमें जो लिख सकता था वह ''पद-रत्नाकर' में श्रीपोद्दारजीका जीवन'' शीर्षकके अन्तर्गत लिख दिया। पूज्य भाईजीने काव्य रचनाकी दृष्टिसे बहुत कम पद लिखे हैं। प्रारम्भमें बम्बईमें संगीताचार्य पं० विष्णु दिगम्बरजीके आग्रहसे कुछ पद रचना हुई। उसके बाद भगवान्के प्रत्यक्षदर्शनोंके आस-पास हृदयोद्गार पद रूपसे प्रकट हुए। उसके बाद करीब २६ वर्षोंमें मात्र ९० पदोंकी रचना हुई जिनको प्रधानतया कल्याणके लिये कहा जा सकता है। व्रजरसके मार्मिक पदोंकी रचना सन् १९५६ से ही हुई। उनमें भी अधिकांश बीमारीके समय या भावुक साधकोंके पत्रोंके उत्तरके रूपमें या राधाष्टमी आदि महोत्सवोंके समय ही लिखे गये। कुछ पद समसामयिक विशेष परिस्थितियोंके समय भी लिखे गये। जैसे गोरक्षा आन्दोलनके समय, चीनके विश्वासघाती आक्रमणके समय, पर ऐसे समय भी उनकी दृष्टि शत्रुके हितकी ओर ही रही। उन्होंने लिखा—

'कर विश्वासघात वह आया, दस्यु भयानकका धर वेश।
उसके इस दुःसाहस, दुष्टवृत्तिका है कर देना शेष॥
दाँत न खट्टे करने हैं, करना है विष-दन्तोंका भंग।
जिससे हो जाये विष-वर्जित निर्मल उसके सारे अंग॥
हो उत्पन्न सुबुद्धि, जगे फिर उसके उरमें पश्चात्ताप।
धर्म-ईशको माने, छोड़े नास्तिकताका सारा पाप॥'

मेरे इस कार्यको कोई अनधिकार चेष्टा भी कह सकता है या व्यर्थ प्रयास भी। मैं भी इसे कोई विशेष वस्तु नहीं मानता हूँ। किसीको इसमें कोई उपयोगी बात मिल जाय और किसी प्रकारसे लाभान्वित हो जाय तो उसीकी गुण ग्राहकता है। हाँ, पद-रत्नाकर जैसे प्रासादिक ग्रन्थका इतने समय चिन्तन, मनन, लेखन हुआ इसे मैं प्रभुकी अपनेपर विशेष कृपा मानता हूँ और अपने समयका सर्वोत्तम उपयोग। अपनी अल्पज्ञतावश हुई भूल की ओर विज्ञजन ध्यान दिलानेकी कृपा करेंगे तो मैं उनका उपकार मानूँगा। पदोंकी पद संख्या पद-रत्नाकरके चतुर्थ संस्करण की ही दी गयी है। रचनाकाल जिन पदोंका प्रामाणिक मिल सका उनका ही दिया गया है।

अन्तमें सहज सुहृद् मेरे प्रभुके स्वभावका स्मरण करता हूँ जिसका वर्णन करते हुए पूज्य भाईजीने मुझे १६ जून १९६१ के पत्रमें लिखा था—

मेरे प्रभु हैं कितने सहज सुहृद, हैं कितने परम उदार।
कितने वे वदान्य हैं, भृत्याधीन, अमित करुणा-आगार॥

दीन उन्हें क्या दे सकता है, अपना 'दैन्य' छोड़कर और।
'सर्वार्पण' वे मान उसे, देते हैं निज उछङ्गमें ठौर॥
हो जाते कृतज्ञ हैं, उसके नहीं देखते कुछ गुण-दोष।
भूल पूर्वके सब पापोंको, हृदय लगा, देते संतोष॥
कर लेते विशुद्ध वे उसको तुरत बना लेते निज यन्त्र।
खूब कराते उससे निज प्रिय कार्य फूँककर नव-नव मन्त्र॥

श्यामसुन्दर दुजारी

॥ श्रीहरि:॥

पद-रत्नाकर—एक अध्ययन

विषय सूची **पृष्ठ सं**

(१)

श्रीपोद्दारजीके काव्यकी पृष्ठभूमि

अनुभूतिकी गहनता सहज ही वाणीका आश्रय लेती है अभिव्यक्त हो उठनेके लिये। प्रबल एवं प्रगाढ़ अनुभूतिकी अभिव्यक्ति जबतक हो नहीं जाती तबतक कवि हृदय उमड़ता ही रहता है। अभिव्यक्ति कवि हृदयकी एक विवशता और आवश्यकता है और यह अभिव्यक्ति ही कवि एवं समाजके लिये एक आनन्ददायी वरदान सिद्ध हो जाता है। महर्षि वाल्मीकिके अन्तरकी आकुलताकी सहज अभिव्यक्तिने ही उन्हें आदि कवि बना दिया। संत तुलसीके अन्तरकी भावुकताकी ललित अभिव्यक्तिने ही उन्हें विश्व-विश्रुत राम-कवि बना दिया। इसी सत्यकी आवृत्ति संत-हृदय श्रीपोद्दारजीके जीवनमें भी हुई। उनकी काव्य रचनामें रचनाकारकी अहमन्यता नहीं, रचना करनेके लिये रचना करनेका प्रयास नहीं, अपितु अन्तर्मुखी, अन्तर्निहित कोमल भावनाओंका दृष्ट, अनुभूत उच्छवास है एवं भावोद्रेककी सहज स्वान्तः सुखाय अभिव्यक्ति है। इसलिये इसमें सहजता है। वस्तुतः यह 'काव्य-रचना' नहीं थी, उनका स्वात्मसंवेदन ही था। स्वात्म संवेदनका अर्थ है—जीवनके महालक्ष्यसे सम्बद्ध अनुभवोंका स्फुरण जिसमें भीतरसे शब्द विद्युत प्रकाशकी भाँति प्रस्फुटित होते हैं। इस स्थितिको श्रीपोद्दारजीने जीवनभर प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखा। किन्तु दिव्यानुभूतिकी वह अंतःसलिला काव्य-कल्लोलिनी काव्यधाराके रूपमें चिरविश्रामके पूर्वतक अजस्र प्रवाहित होती रही, जिसने आज हिन्दी साहित्यकी सूर, तुलसी, कबीरकी परम्परामें भक्ति साहित्यको एक और उज्ज्वल और अपूर्व रत्न प्रदान किया है। उनके काव्यका अध्ययन करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका हृदय सहज ही कवि हृदय था। अन्यथा पत्रोंके उत्तरके रूपमें इतनी विपुल मात्रामें पदोंकी रचना संभव नहीं थी। उनका काव्य, उनका एकांतिक प्रेमी-भक्तके स्वरूपको प्रकट करता है, जिसमें उनके निश्छल एवं भाव विह्वल भक्त हृदयको यथार्थ प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

श्रीपोद्दारजीके काव्यमें उनकी साधनाके सोपान भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं एवं उनके अन्तर्हृदयकी अनुभूतियोंके भी सहज दर्शन होते हैं। उनकी पद-रचना कवि-कल्पना न होकर उनकी स्वानुभूतिके उद्‌गार हैं। उनके द्वारा किया गया लीला प्रसंगोंका वर्णन बौद्धिक प्रक्रिया-प्रसूत न होकर साक्षात् लीला-परिकरके रूपमें प्राप्त प्रत्यक्षानुभवपर आधृत हैं। कुछ पदोंके तो पढ़नेसे साधारण पाठकोंको भी ऐसा

परिलक्षित होता है कि जो लीला दृश्य उनके नेत्रोंके समक्ष प्रकट था उसीका आँखों देखा चित्र वे शब्दोंके माध्यमसे प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्रीपोद्दारजीकी काव्य रचनाका श्रीगणेश उनके बम्बई प्रवासके समय सन् १९२२ के लगभग ही हो गया था। यद्यपि वे बम्बई गये थे अर्थार्जनके निमित्तसे ही पर उस कर्म बाहुल्य जीवनमें ही वे अपनी साधनाकी उच्च भूमिकामें प्रतिष्ठित हो गये थे। सन् १९५६ रूपमें कहीं भी प्रकट नहीं होने दिया। जिस काव्यकी हिन्दीके उद्भट विद्वानों एवं समालोचकोंने हृदय खोलकर प्रशंसा की उसीके रचनाकार श्रीपोद्दारजी एक 'दीन' नामसे स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं—

"इस दीनमें न तो अनुभव है, न भाव ही है। यह न तो किसी अंशमें कवि है और न काव्य शास्त्रका ही इसे तनिक ज्ञान है। यह तो सफल तथा शुद्ध तुकबन्दी करनेमें भी असमर्थ है। इसीलिये इसे लज्जा तथा संकोच होता है, अपना परिचय देनेमें।"

----×----

(२)
श्रीपोद्दारजीकी काव्य-रचनाके प्रेरकतत्त्व

हिन्दी काव्य जगत्में श्रीपोद्दारजीका उदय ऐसे समयमें हुआ जब भारतीय जनमानस शिक्षा एवं सभ्यताके प्रभावसे भारतीय संस्कृतिके प्रति उत्तरोत्तर उदासीन होता जा रहा था। हमारे साहित्य एवं प्राचीन संस्कृतिके प्रति शिक्षित वर्गकी आस्था उठने लग गयी थी। खड़ी बोली जो जनसाधारणकी भाषाके रूपमें उभर रही थी उसमें काव्य रचना न्यून मात्रामें थी। ऐसे समयमें श्रीपोद्दारजीका अवतरण हुआ तथा वे अपनी गद्य एवं पद्य रचनाके द्वारा जनताके बहुमुखी उत्थानके सतत संघर्षमें लग गये।

श्रीपोद्दारजीकी मान्यता थी कि समाजको संस्कारित करनेमें, पवित्र नैतिक जीवनको प्रोत्साहन एवं प्रेरणा देनेमें, जीवनको श्रेयके मार्गपर ले जानेमें, सात्त्विक प्रवृत्तिकी ओर निरन्तर आगे बढ़नेमें जो सहयोग दे, वही वास्तविक 'साहित्य' पद-वाच्य है। उसमें मनुष्यकी मानसिकता एवं विचारधाराको चाहे जिस ओर लगा देनेकी शक्ति होती है। साहित्यका ही प्रभाव था कि एक दिन भारतकी गति सर्वथा भगवद्‌भिमुखी थी। आज यह साहित्यका ही प्रभाव है कि भारतीय मानव भगवद्विमुखी होकर भोगोंकी ओर दौड़ रहा है। परंतु इसमें साहित्यकी सार्थकता नहीं है। यह उसका दुरुपयोग है। जो साहित्य भगवत्प्रीत्यर्थ प्रस्तुत होता है, जो मनुष्यकी अन्तरकी सुप्त पवित्र सात्त्विक वासनाओंको जगाकर उसे भगवद्‌भिमुखी बना देता है वही सत् साहित्य है और उसीसे मानव-कल्याण होता है। उनकी यह मान्यता ही उनके काव्यकी रचनाका मुख्य प्रेरक तत्त्व है।

इस प्रमुख प्रेरक तत्त्वके साथ ही जिस समय उनकी काव्य रचना प्रारम्भ हुई उसके प्रेरक तत्त्वकी अभिव्यक्ति उन्होंने संकेत रूपसे निम्न शब्दोंमें की—

''मंगलमय भगवान् अनन्त कृपासिन्धु हैं। उन्होंने कृपा करके मंगलमय रोग भेजा। .... सहज अकेले रहनेका सुअवसर मिला। चिकित्सा-औषध-पथ्यादिके समयको छोड़कर शेष समय अकेला ही बन्द कमरेमें रहता। ....इसी बीच मन्द-मन्द मुस्कराते हुए विश्व-जन-मन-मोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते-हँसकर सिरपर वरद-हस्त रखकर कहते—'मूर्ख! क्यों रो रहा है? क्यों दीन-हीन बनकर दुःखी हो रहा है? चल, मेरे साथ व्रजमें; देख वहाँ मेरी दिव्यलीला और

परमानन्द-सागरमें निमग्न हो जा।' श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन आनन्द-कंदकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता। मन मंत्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे-पीछे। वे उसे परम रम्य क्षेत्रमें छोड़कर चले जाते और लग जाते अपने लीला-विहारमें।

मन स्वच्छन्द विचरण करता—कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदा मैयाके प्राङ्गणमें, कभी गोष्ठमें, कभी सखाओंके हास्य-विनोदमें, कभी वनसे लौटकर आवनीमें, कभी कालिन्दीके कूलपर, कभी रास-मण्डलमें, कभी प्रेममयी गोपाङ्गनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें, किसी अकेली सखीके मनमें, कभी सखियोंकी मधुर प्रेमचर्चामें, कभी-कभी वंशीवटपर, कभी श्रावणके झूलोंमें, कभी शारदीय झूलोंमें, कभी होलीके रंगमें, कभी नव-प्रफुल्लित कुसुम-सौरभित वृन्दा-काननमें, कभी श्रीमतीके पास, कभी श्रीश्यामसुन्दरके पास, कभी निभृत निकुञ्जोंमें, कभी किशोर-किशोरीकी लीला-विहार-स्थलीमें, कभी उनके परस्पर होनेवाले मधुरतम उच्च प्रेमालापोंमें, कभी उद्धव-गोपी-मिलनमें, कभी मथुरामें होनेवाले श्रीकृष्ण-उद्धव-मिलनमें, कभी मथुरा जानेके पश्चात् राधा तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रेम-विरह-दशामें—इस प्रकार प्रतिदिन दिन-रात महीनोंतक यह दैन्य और लीला-दर्शनका प्रवाह अबाध चलता रहा। मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप-माधुरी देखी, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। कभी-कभी सौन्दर्य-सुधासागरमें जाकर अपने-आपको खो दिया। वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत था, अत्यन्त विलक्षण था। उसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है। उसके लिये शब्द नहीं है। परंतु जितना कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोड़े अंशका तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोड़े-से उद्गारोंका इन तुकबंदियोंमें चित्रण करनेका प्रयास किया गया है।''

----×----

(३)
पद-रत्नाकरमें श्रीकृष्णका स्वरूप

हमारे शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके विभिन्न स्वरूप प्रकट हैं। वे स्वरूप परस्पर इतने भिन्न हैं कि कुछ बुद्धिजीवियोंने भागवतके श्रीकृष्ण और महाभारतके श्रीकृष्णको अलग-अलग माननेकी भी आस्थाहीन चेष्टा की है। उनकी बुद्धिमें यह बात नहीं आ सकी कि कोई एक व्यक्ति इतने भिन्न स्वभाव एवं स्वरूपका हो सकता है। वे यह बात भूल जाते हैं कि श्रीकृष्ण कोई व्यक्ति नहीं वरन् सच्चिदानन्दस्वरूप स्वयं भगवान् हैं। हिन्दी काव्यमें भक्तिकालके अधिकांश भक्त कवियोंने व्रजके श्रीकृष्णके मधुर स्वरूप एवं लीलाओंका चित्रण किया है। पर श्रीपोद्दारजीने अपने काव्यमें श्रीकृष्णके विभिन्न स्वरूपोंका बड़ा ही सरस एवं मनोरम चित्रण किया है। श्रीकृष्ण कौन हैं—उनके समग्ररूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—

सर्वातीत सर्वविरहित, जो सर्व, सर्वमय, सर्वाधार।
सर्वव्यापक, सर्वात्मा जो, स्वयं सृष्टि, स्त्रष्टा, संहार॥
मायापति, नित मायाविरहित, ब्रह्म, ब्रह्ममय, ब्रह्माधार।
निर्गुण, सगुण निराकृति, नित्य निरञ्जन, दिव्य सगुण साकार॥
प्रकृति-विकृतिमय, व्यक्त, प्रकृतिगत पुरुष, विश्वमय, विश्वाकार।
अपरीवर्तन रूप, एकरस, नित वैचित्र्यपूर्ण संसार॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूपसे करते जो लीला-विस्तार।
सरस्वती-लक्ष्मी-कालीके विविध अनन्त प्रकट आकार॥
देश-काल-बन्धन-विरहित, जो देश-कालमय, कालातीत।
कालरूप विकराल, सुनाते नित विनाशके भैरव गीत॥
नित्य-अनन्त-असीम-अलौकिक, परम स्वतन्त्र 'स्वयं भगवान'।
करते अन्तमयी-सी लीला, लौकिक, सीमित, कर्मप्रधान॥
'अवतारी' सब अवतारोंके, सबके 'अंशी' नित्य, अनादि।
सभी ईश्वरोंके ईश्वर, सब लोक-महेश्वर, सबके आदि॥
षोडशकलापूर्ण, सच्चित्-घन षडैश्वर्यसम्पन्न, उदार।
अज, अविनश्वर, चिन्मय भगवद्देहरूप, नित विगतविकार॥

लीलामय, लीला, लीलाके दर्शक, दिव्य सच्चिदानन्द।
अखिल प्रेम-रससिन्धु, प्रेमघनमूर्ति, प्रेम-वितरक स्वच्छन्द॥
विविध अचिन्त्यानन्त विरोधी गुणधर्माश्रयरूप महान।
प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान॥
साधुजनोंका परित्राण, अति दुष्टोंका करने निस्तार।
धर्मस्थापन-हेतु स्वयं प्रभुने यह लिया दिव्य अवतार॥
हरनेको निज प्रेमी विरही-जनका घोर विरह-संताप।
प्रेमधर्म-संस्थापनार्थ शुचि इच्छामय प्रगटे प्रभु आप॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७५३)

इस वर्णनसे स्पष्ट है कि श्रीपोद्दारजीके श्रीकृष्ण निर्गुण, सगुण- निराकार एवं सगुण साकार सभी हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपसे प्रकट होकर सृष्टि विस्तार करते हैं, वे ही सब अवतारोंके अवतारी हैं, वे ही सर्वलोकमहेश्वर होते हुए ही प्रेमघनमूर्ति हैं तथा प्रेमधर्म संस्थापनार्थ प्रकट होते हैं।

ऐसे भगवान्ने स्वयं श्रीपोद्दारजीको गले लगा लिया। इसको स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं—

हे वसुदेव-देवकी-सुत! हे कृष्ण! यशोदा-नँदके लाल!
हे यदुपति! व्रजपति! हे गोपति! गोवर्धनधर! हे गोपाल!
मेरे एकमात्र आश्रय तुम, तुम ही एकमात्र सुखसार।
तुम्हीं एक सर्वस्व, तुम्हीं, बस, हो मेरे जीवन साकार॥
कितने बड़े, उच्च तुम कितने, कितने दुर्लभ, दिव्य, महान।
गले लगाया मुझ नगण्यको, सब भगवत्ता भूल सुजान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २७)

जिस रूपमें प्रकट होकर उनको गले लगाया उस सन्दर्भका भी श्रीपोद्दारजीने वर्णन किया है—

बाँकी भौंहे, तिरछी चितवन, नलिन-विलोचन रसवर्षी।
बदन मनोहर मदन-दर्प-हर परमहंस-मुनि-मन-कर्षी॥
अरुण अधर धर मुरलि मधुर मुसकान मञ्जु मृदु सुधिहारी।
भाल तिलक, घुँघराली अलकैं, अलिकुल-मद-मर्दनकारी॥
गुंजाहार, सुशोभित कौस्तुभ सुरभित सुमनोंकी माला।
रूप-सुधा-मद पी-पी सब सम्मोहित ब्रजजन-ब्रजबाला॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २५)

इस दिव्य सौन्दर्य माधुर्य स्वरूपके सजीव वर्णनके अनेकानेक पद 'पद-रत्नाकर' में भरे हैं जिन्हें पढ़कर कोई भी सहृदय साधक अपने मानस नेत्रोंके समक्ष उस मधुरातिमधुर स्वरूपके दर्शन कर सकता है। विस्तारभयसे यहाँ केवल एक ही चित्र और प्रस्तुत किया जा रहा है—

सजल-जलद-नीलाभ श्याम तन परम मनोहर।
गोरोचन-चर्चित तमाल-पल्लव-सम सुन्दर॥
गोल भुजा आजानु प्रलम्बित मद मनोज हर।
कङ्कण-केयूरादि विभूषित परम रम्य वर॥
गुञ्जावलि-परिवेष्टित, सुमन विचित्र सुशोभित।
चूड़ामण्डित रत्न-मुकुट शिखिपिच्छ नवल युत॥
घुँघराली अलकावलि, नील कपोल सुचुम्बित।
कुण्डल-द्युति कमनीय गण्ड-आभापर उजलित॥
बिम्बाफल-बन्धूक पुष्पके सुषमाहारी।
अरुण अधरपर मधुर मुरलिका मञ्जुल धारी॥
हास्य मधुरतम त्रिभुवन-मोहन अति मुदकारी।
नासा-अग्र सुराजित मुक्ता मणि-सहकारी॥

× × × ×

कौस्तुभमणि देदीप्यमान विस्तृत वक्षःस्थल।
दिव्य रत्न-मणि-हार, सुमन-माला शोभित गल॥
कटि किङ्किणी मृदु मधुर शब्द घण्टिका-विकासित।
अरुण चरण-नख दिव्य ज्योतिसे ब्रह्म प्रकाशित॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १५९)

श्रीराधा और श्रीकृष्णको भी श्रीपोद्दारजी अनादिकालसे प्रकट एक ही तत्त्वके दो रूप मानते हैं। केवल लीलारस आस्वादनके लिये वे दो रूपोंमें प्रकट हैं—

श्रीराधा श्रीकृष्ण नित्य ही परम तत्त्व हैं एक अनूप।
नित्य सच्चिदानन्द प्रेमघन-विग्रह उज्ज्वलतम रस रूप॥
बने हुए दो रूप सदा लीला-रस करते आस्वादन।
नित्य अनादि-अनन्त काल लीलारत रहते आनँदघन॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७२९)

इसी तत्त्वको सभी लोग पूर्णतया हृदयंगम कर सकें इसलिये उन्होंने कई प्रकारसे समझानेका प्रयास किया है—

कृष्ण शक्तिमय, शक्ति राधिका—चिन्मय एक तत्त्व भगवान।
नित्य, अनादि, अनन्त, अगोचर, अमल, अनामय, सत्य महान॥
त्रिगुणरहित, भगवद्‌गुणमय, शुचि सच्चिन्मय आनन्द-शरीर।
लीलामय, लीला, लीला-रत, दो तनु दिव्य नित्य अशरीर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १८२)

जैसे श्रीराधाको श्रीपोद्दारजीने प्रेमकी घनीभूत मूर्ति माना है वैसे ही उनके श्रीकृष्ण भी प्रेमरूप ही हैं। श्रीकृष्णमें प्रेमके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनके श्रीकृष्ण—

शुद्ध प्रेमरूप हैं केवल प्रियतम परम मधुर श्रीकृष्ण।
देते प्रेम सर्वथा अविरत, लेते सदा प्रेम श्रीकृष्ण॥
कहते-सुनते, सदा सूँघते केवल एक प्रेम श्रीकृष्ण।
प्रेम देखते-चखते, करते स्पर्श प्रेम केवल श्रीकृष्ण॥
करते प्रेम-कार्य ही केवल, पावन प्रेम-प्राण श्रीकृष्ण।
रहते सदा प्रेमके चाकर, नित्य प्रेम-स्वामी श्रीकृष्ण॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६९६)

प्रेमरूप होनेपर भी वे श्रीकृष्ण, श्रीराधाके समक्ष अपनेको प्रेम-शून्य मानते हैं। वे यही कहते हैं कि प्रेमकी खान तुम हो। मैं तो यह भी नहीं जानता कि प्रेम क्या होता है? दोनोंके परस्पर संवादमें श्रीकृष्ण कहते हैं—

हे वृषभानुराजनन्दिनी! हे अतुल प्रेम-रस-सुधा-निधान!
गाय चराता वन-वन भटकूँ, क्या समझूँ मैं प्रेम-विधान!
ग्वाल-बालकोंके सँग डोलूँ, खेलूँ सदा गँवारू खेल।
प्रेम-सुधा-सरिता तुमसे मुझ तप्त धूलका कैसा मेल!
तुम स्वामिनि अनुरागिणी! जब देती हो प्रेमभरे दर्शन।
तब अति सुख पाता मैं, मुझपर बढ़ता अमित तुम्हारा ऋण॥
कैसे ऋणका शोध करूँ मैं, नित्य प्रेम-धनका कंगाल!
तुम्हीं दया कर प्रेमदान दे मुझको करती रहो निहाल॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५५२)

ऐसे सैकड़ों शब्द-चित्र पद-रत्नाकरमें सन्निहित हैं, जो एक-से-एक बढ़कर सरस, मधुर और हृदयको रसप्लावित कर देते हैं। इनका रसास्वादन तो पद-रत्नाकरके पारायणसे ही संभव है। ब्रह्माण्ड पुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधावाराध्यते मया॥

राधाकी आत्मा सदा मैं श्रीकृष्ण हूँ और मेरी (श्रीकृष्णकी) आत्मा निश्चय ही राधा हैं। श्रीराधा वृन्दावनकी ईश्वरी हैं; इस कारण मैं राधाकी ही आराधना करता हूँ।

श्रीपोद्दारजीने भी इस तथ्यको स्थान-स्थानपर प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं—

प्राणेश्वरि! निश्चय ही तू ही है मेरी आत्मा अभिराम।
तुममें सदा रमण करता मैं, इससे कहते 'आत्माराम'॥
मेरे तन-मन, मति-गतिकी है एकमात्र तू ही आधार।
तू ही जीवनका मधुमय रस, तू ही है बस, जीवन-सार॥
तू ही है सर्वस्व प्रिये! है तू ही मेरी जीवन-मूल।
तब कैसे यह है सम्भव मैं लवभर तुझको जाऊँ भूल॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५६१)

'पद-रत्नाकर' में प्रधानतया व्रजलीलाके ही पद हैं जो खड़ी बोलीके काव्यमें अद्वितीय हैं। यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि खड़ी बोलीके काव्यमें व्रजकी लीलायें इतनी प्रचुर मात्रामें अन्यत्र कहीं नहीं है। वैसे तो व्रजके भक्तोंकी मान्यता है कि श्रीकृष्ण व्रज छोड़कर कहीं बाहर गये ही नहीं, जा सकते ही नहीं—

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'

पर अन्य भक्तोंके अनुसार श्रीकृष्णने अपनी सम्पूर्ण लीलाका दशमांश ही व्रजमें व्यतीत किया। श्रीपोद्दारजीने भी आगेकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन अपने काव्यमें किया है। व्रजसे अक्रूरजीके साथ प्रस्थानका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

मधुपुरी गवन करत जीवन-धन।
लै दाउए सँग सुफलक-सुत, सुनि जरि उठी ज्वाल सब मन-तन॥
भई विकल, छायौ, बिषाद मुख, सिथिल भए सब अंग सु-सोभन।
उर-रस जर्‌यौ, रहे सूखे द्वय दृग अपलक, तम व्यापि गयौ घन॥

लगे आय समुझावन प्रियतम, पै न सके, प्रगट्यौ विषाद मन।
बानी रुकी, प्रिया लखि आरत, थिर तन भयौ, मनो बिनु चेतन॥
भावी विरहानल प्रिय-प्यारी जरन लगे, बिसरे जग-जीवन।
कौन कहै महिमा या रति की, गति न जहाँ पावत सुर-मुनि-जन॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३१७)

इसके बाद मथुरा पहुँचकर—

मथुरा पहुँच, किया धोबीका, कुब्जाका मङ्गल उद्धार।
मार कुवलयाको, मुष्टिक-चाणूर मल्लका कर संहार॥
पापी कंस क्रूरका वध कर, देकर उग्रसेनको राज—
करने लगे विविध लीला फिर ज्ञान-शक्ति-लीला-रसराज॥
कालयवनका सहज दमन कर, जरासंधका हर अभिमान।
बसे द्वारकामें जा माधव, किये विवाह अष्ट सविधान॥
भौमासुरका वध कर, सोलह सहस राजकन्या ले साथ।
आये, की कामना पूर्ण, उनको पकड़ा निज मङ्गल हाथ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७५५)

द्वारिकामें राजाओंके निर्माता श्रीकृष्ण कैसे शासन करते थे इसका वर्णन श्रीकृष्णके मुखसे ही श्रीपोद्दारजीने इस प्रकार किया है—

रहता पुरी द्वारिकामें मैं, करता हूँ सबका शासन।
सभी सदा अनुगत रह मेरा सतत मानते अनुशासन॥
विविध प्रचुर ऐश्वर्योंसे युत सुन्दर भव्य राज-प्रासाद।
रमणी-रत्न सहस्त्रोंसे जगमग, उपजाते अति आह्लाद॥
तन-मनसे सेवा-रत विनय-विभूषित, गलित-गर्व सारी।
एक-एकसे बढ़कर शुभ गुण-रूपवती निर्मल नारी॥
राज-काज करता सब अनलस, शत्रु-मित्रसे सदा सचेत।
राष्ट्र-नीतिकी रक्षा करता, सदा सतर्क, धर्म-समवेत॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६००)

श्रीपोद्दारजीके श्रीकृष्ण द्वारिकामें रहते हुए भी श्रीराधाको भूल नहीं पाते हैं। नींदमें सोये हुए भी अचानक श्रीराधाको याद करके बिलख उठनेका एक चित्र प्रस्तुत किया है—

औचक चौंकि उठे हरि बिलखत।

'हा राधा प्रानेस्वरि! इकलौ छाँड़ि मोहि भाजी कित॥
ललिता! अरी बिसाखा! धावौ, रंगमंजरी! धावौ।
मेरी प्रानाधिका राधिका कौं झट लाय मिलावौ'॥
लंबे साँस लेहिं, प्रलपहिं, बिलपहिं, दृग आँसू ढारैं।
रुकमिनि सहमि बहुत समुझावति, तदपि न होस सँभारैं॥
पटरानी सब जुरि आईं, लखि दसा, मनहिं भय मानी।
कहा भयौ, पिय भए बावरे, कहा दैव नै ठानी॥
रानी एक दौरि लै आई श्रीमति की छबि मनहर।
देखत ही हँसि उठे स्याम, लीन्हीं लगाय आतुर उर॥
मेरे हिय सौं लगी रहौ तुम निसि-दिन राधा प्यारी।
जीवन-मूरि! छाँड़ि मोहि, छिन भर रहौ न कबहूँ न्यारी॥
देखि विचित्र दसा प्रियतम की, बिस्मित सब पटरानी।
निज प्रेमहि धिक्कारन लागीं, भई उदय मन ग्लानी॥
कियौ चेत हरि नै, पौंछे पट नैन मृदुल-अरुनारे।
पटरानी पद-पदुम परीं, सब विलखि रही मन मारे॥
कर-कमलनि हरि नै उठाइ निज, धीरज दै चुचकारी।
मृदु हँसि कह्यौ—'नैकु सकुचौ मति, छाड़ौ चिंता भारी॥
सपनौ देखि भयौ हौं आतुर, सुध-बुध बिसरी सारी।
करौ हृदय बिस्वास, सदा हौं प्राननाथ, तुम प्यारी'॥
आस्वासन दै या बिधि रानिन कौं हरि नै समुझाई।
राखी हृदय गोय राधा-रति, अनुपम, परम सुहाई॥

(पद-रत्नाकर, पद सं ४१५)

द्वारिकाकी एक बड़ी मधुर लीला है जिसमें सत्यभामाजीने नारदजीको श्रीकृष्णका दान कर दिया—पद-रत्नाकरमें प्रस्तुत है—

चिन्तन किया श्यामने, मुनिवर नारद आ पहुँचे तत्काल।
पूजा विधिवत् कर पहनायी मुनि-सुकण्ठमें सुरभित माल॥
भोजन रुचि-अनुकूल कराया, सत्याने पति-आज्ञा जान।
धेनु सहस्त्र स्वर्णमणि-पर्वत सह कर दिया कृष्णको दान॥
मुनिने हँसकर कहा—'हो गये अब हरि! तुम मेरे आधीन।
आज्ञा पालन करो'—किया स्वीकार कृष्णने समुद अदीन॥

तब मुनिने सवत्स कपिला गौको निष्क्रयका मान विधान।
मुक्त किया हरिको, फिर पाया उनसे मनचाहा वरदान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं ८८२)

कौरव-पाण्डव युद्धके पहले वे संधि करानेके लिये दूत बनकर भी जाते हैं—

शुद्ध सच्चिदानन्द दिव्य वपु मधुर अखिल जगके स्वामी।
सबके परमेश्वर, सबके ही साक्षी सर्वान्तर्यामी॥
धर्मस्थापक, दुष्टदलन-कर्ता, सत्-संरक्षणकारी।
संधि-दूत बन चले स्वयं श्रीकृष्ण भक्त-संकट-हारी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८७८)

जब दुर्योधन किसी शर्तपर संधि करनेके लिये राजी नहीं हुआ तो वहाँसे श्रीकृष्ण विदुरके यहाँ पधारे—

विदुर-घर स्याम पाहुने आये!
नख-सिख रुचिर-रूप मनमोहन, कोटि मदन-छबि-छाये॥
विदुर न हुते घरहि में तेहि छिन, स्याम पुकारन लागे।
विदुर-घरनि नहाति उठि धाई नैन प्रेम-रस पागे॥
भूली बसन न्हात रहि जेहि थल, तनु सुधि सकल भुलाई।
बोलति अटपट बचन प्रेमबस, कदरी-फल ले आई॥
छीलत डारत गूदो इत-उत छिलका स्याम खवावै।
बारहिं-बार स्वाद कहि-कहि हरि, प्रमुदित भोग लगावै॥
तनिक बेर महँ हरि गुन गावत, विदुर घरहिं जब आये।
देखि दरस सो कहत, 'अहह! तैं छिलका स्याम खवाये'॥
कर तें केरा झटकि विदुर घरनी घर माँहि पठाई।
तनु सुधि पाइ सलाज ससंकित, बसन पहिरि चलि आई॥
विदुर प्रेमजुत छीलि छीलिकै केरा हरिहिं खवावै।
कहत स्याम—वह सरस मनोहर स्वाद न इन महँ आवै॥
भूखौ सदा प्रेम कौ डोलूँ भगत-जनन गृह जाऊँ।
पाइ प्रेमयुत अमिय पदारथ, खात न कबहुँ अघाऊँ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं ८७९)

इतना ही नहीं भक्तवत्सल भगवान् भक्तके वशमें होकर न करने लायक कार्य भी सहर्ष करते हैं। युद्धमें अर्जुनके सारथी बनकर केवल रथको हाँका हो ऐसी बात ही नहीं—उन्होंने अश्वोंकी परिचर्यातक अपने हाथोंसे की—

बढ़ते चले, शूल-मद-मर्दन करते पार्थ जयद्रथ-ओर।
कुरु-दल-दर्प-दलन द्रुत करते समराङ्गण रण दारुण घोर॥
उतर पड़े रथसे, जब देखा अश्वोंको घायल अति श्रान्त।
रोक लिये एकाकी सहसा सभी शूर भूपति दुर्दान्त॥
किया प्रकट जलपूर्ण सरोवर कर पृथ्वीपर अस्त्राघात।
रचा रुचिर परिचर्यागृह अश्वोंका वाणोंसे विख्यात॥
करने लगे चिकित्सा-सेवा स्वयं भक्तवत्सल भगवान।
अश्व हुए अक्षत, उत्साहित, पुनः पूर्ववत् शक्ति-निधान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८८०)

जब लीला सम्पन्न करके श्रीकृष्ण अपने परमधामको प्रस्थान करने लगे तब व्याधने उनके चरणोंमें बाणसे आघात किया उसका वर्णन करते हुए श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

व्याध बिनवत दोऊ कर जोरे।
'मोतें देव! दयानिधि!! भारी दोष भयो भोरे॥
मैं जान्यौ ठाढ़ौ मृग मगमें ताते तेहि मार्‌यो।
बेध्यौ पाद-पदुम प्रभु केरौ कूर कुमति हार्‌यौ॥
दीजै दंड पतित पापी कौं सकुच न करि सपने'।
प्रभु कह—'तेरौ दोष नहीं कछु हौं प्रेरक अपने'॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८८३)

इस तरह हम देखते हैं कि 'पद-रत्नाकर' में श्रीपोद्दारजीने व्रजलीलाओंकी प्रधानता रखते हुए श्रीकृष्णकी समग्र लीलाओंका व्यास-समास शैलीमें सरस और सजीव वर्णन किया है।

----×----

(४)
पद-रत्नाकरमें श्रीराधाका स्वरूप

हिन्दी काव्यमें श्रीराधाके विभिन्न स्वरूप प्रकट हुए हैं। बहुतसे कवियोंने उनका चित्रण अपनी कल्पनानुसार एक विलासप्रिय स्वच्छन्द रमणीके रूपमें किया है। किसीने उन्हें साधन जगत्की साधिकाके रूपमें देखा है। किसीने श्रीकृष्णकी प्रेयसीके रूपमें तो किसीने श्रीकृष्णकी आराधिका। किसीने उन्हें परकीया माना है तो किसीने श्रीकृष्णकी आराध्या। श्रीपोद्दारजीने उनके स्वरूपको प्रकट करते हुए लिखा है—

'जिन श्रीराधाजीकी अयाचित कृपासे मुझे उनका जो कुछ परिचय मिला है और जिन्होंने अपने महान् अनुग्रहदानसे मुझ पतित-पामरको अपनाकर कृतार्थ किया है, वे अपनी अचिन्त्य महिमामें स्थित श्रीराधाजी न तो विलासमयी रमणी हैं, न उनका उत्तरोत्तर क्रम-विकास हुआ है, न वे कवि-हृदय-प्रसूत कल्पना हैं और न उनमें किसी प्रकारका गुण-रूप-सौन्दर्याभिमान ही हैं। वे एकमात्र अपने प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी सुख-विधाता हैं। वे इतनी त्यागमयी हैं, इतनी मधुर-स्वभावा हैं कि अचिन्त्यानन्त गुण-गणकी अनन्त आकर होकर भी सदा सर्वसद्‌गुणहीन अनुभव करती हैं।' श्रीराधाका यही स्वरूप उनके काव्य-संग्रह 'पद-रत्नाकर' में स्थान-स्थानपर विभिन्न रूपोंमें प्रस्तुत हुआ है—

कृष्णप्रेयसी कान्तागणमें सर्वशिरोमणि श्रीराधा।
लक्ष्मी-महिषी-गोपीजनकी मूल, मुकुटमणि श्रीराधा॥
कृष्ण-प्रेम-भावित-चित्तेन्द्रिय-बुद्धि-अहं-सारा राधा।
निर्मल प्रेमपूर्ण पावनकी मधुर सुधा-धारा राधा॥
लीलामयी, कृष्णलीलाकी शुचि सहायिका श्रीराधा।
कृष्ण-सुखैक-जीवना, प्रियतम-स्नेह-दायिका श्रीराधा॥

× × × ×

सर्वगुणमयी, गुण-गौरव-अभिमान-विरहिता श्रीराधा।
महामानिनी, विमल, वियोगिनी, नित प्रियतमसहिता राधा॥

उज्ज्वल दिव्य त्याग अनुपमकी परमादर्श मूर्ति राधा।
दुर्लभ कृष्ण-प्रेमकी नव-नव सहज विचित्र स्फूर्ति राधा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८०८)

'पद-रत्नाकर' में श्रीराधा स्वसुख वासनासे रहित केवल श्रीकृष्णके सुख सम्पादनमें लगी रहती हैं। उनका जीवन ही प्रियतम सुखार्थ है। इतनेपर भी वे यह कभी नहीं मानती हैं कि मैं श्रीकृष्णको सुख देती हूँ।

राधारानी देतीं प्रियको पल-पल नया-नया आनन्द।
उस आनँदसे शत-शतगुण आनन्द प्राप्त करतीं स्वच्छन्द॥
तन-मन-धन-जीवन-मति-गति, सब वस्तु, कर्म-आचार-विचार।
प्रियतमके सब सहज समर्पित, नित सुख-सेवा-रत, अविकार॥
किंतु न रहता उन्हें कभी भी अपने देनेका कुछ भान।
कभी न आता उनके मनमें निज कृतिका किंचित् अभिमान॥
रागरहित शृंगार विलक्षण, भोगरहित नित भोग महान।
प्रियतम-सुख हित दैन्ययुक्त सब हैं, अभिमान-रहित अतिमान॥
निज सुख-वाञ्छा विरहित ममता, नित विरागमय प्रिय-आसक्ति।
भोजन-पान स्वादविरहित निज, प्रिय-सुख-हेतु मुक्त अनुरक्ति॥
मलिन काम-तमका न कभी हो पाता उनमें लेश प्रवेश।
रहता नित्य प्रकाशित शुचितम, दिव्य-ज्योतिमय प्रेम दिनेश॥
संयमपूर्ण सहज चलते नित देह-गेहके सब व्यवहार।
वे भी सब प्रिय-सुख-साधन ही होते, निजको सदा बिसार॥
अतुलनीय सौन्दर्य-शील, सद्गुण, स्वभाव, सद्भाव, सुरूप।
मेरी राधाके ये कृष्णाकर्षी पावन दिव्य अनूप॥
नित्य सेविका वे प्रियतमकी, विनय-विनम्र सहज मन दीन।
कहतीं सदा, मानतीं निजको दुर्लभ श्याम-प्रेम-धन-हीन॥
किंतु श्याम नित रीझे रहते, करते नित नूतन मनुहार।
परमाराध्य मानते निर्मल मनसे प्रियतम नन्दकुमार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७३६)

इतना होनपर भी वे कहती हैं कि मैं तो सर्वथा गुणरहित गँवार हूँ। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु या भाव नहीं है जिससे मैं श्रीकृष्णको सुख प्रदान कर सकूँ—

फिर मैं तो गुणरहित सर्वथा, कुत्सित-गति, सब भाँति गँवार।
सुन्दरता-मधुरता-रहित कर्कश कुरुप अति दोषागार॥
नहीं वस्तु कुछ भी ऐसी, जिससे तुमको मैं दूँ रसदान।
जिससे तुम्हें रिझाऊँ, जिससे करूँ तुम्हारा पूजन-मान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६१४)

श्रीराधा केवल श्रीकृष्णके सम्मुख ऐसे उद्‌गार व्यक्त करती हों ऐसी बात नहीं है। एकान्तमें वे जब अपनी सखियोंसे बात करती हैं तब वहाँ भी यही कहती हैं—

सखी री! हौं अवगुन की खान।
तन गोरी, मन कारी, भारी पातक-पूरन प्रान॥
नहीं त्याग रंचकहू मन में, भर्‌यौ अमित अभिमान।
नहीं प्रेम कौ लेस, रहत नित निज सुख कौ ही ध्यान॥
जग के दुःख अभाव सतावैं, हो मन पीरा-भान।
तब तेहि दुख दृग स्त्रवै अश्रु-जल, नहिं कछु प्रेम निदान॥
तिन दुख-अँसुवन कौं दिखरावौं हौं सुचि प्रेम महान।
करौं कपट, हिय-भाव दुरावौं, रचौं स्वाँग सग्यान॥
भोरे मम प्रियतम विमुग्ध ह्वै करैं विमल गुन-गान।
अतिसै प्रेम सराहैं, मो कूँ परम प्रेमिका मान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५३२)

यद्यपि 'पद-रत्नाकर' में अधिकांश पद श्रीराधाके भाव सौन्दर्यके ही हैं; पर कुछ पदोंमें श्रीपोद्दारजीने स्वरूप-सौन्दर्यका भी किंचित् दिग्‌दर्शन किया है।

हरत मन माधव कंचन-गोरी।
राधा अनियारे-रतनारे लोचन सौं, कछु भौंह मरोरी।
पग-पैंजनि, दोउ चरन महावर, करधनि धुनि मनु मधु-रस घोरी॥
दरपन कर, सोहत मुकता-मनि-हार हृदै, मृदु हँसनि ठगोरी।
नैननि बर अंजन मन-रंजन, चित्त-बित्त-हर नित बरजोरी॥
नील बसन, सरदिंदु बदन-दुति, बेंदी सेंदुर-केसर-रोरी।
सहज मथत मन्मथ-मन्मथ मन दिब्य छटा वृषभानु-किसोरी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १७७)

विशुद्ध प्रेमके आठ स्तर माने गये हैं, उनमें सर्वोच्च है—महाभाव। महाभावके भी सर्वोपरि दो स्तर माने गये हैं—मादन और मोदन जो केवल श्रीराधामें

ही प्रकट हैं—

भाव सिखर जब उच्चतम पहुँचत सहजहिं जाय।
'महाभाव' सो मधुरतम परम बिमल मन-भाय॥
महाभाव के दो परम स्तर उज्ज्वल सुचि हेम।
'मोदन' 'मादन' नाम धरि प्रगटत पूरन प्रेम॥
महाभाव मादन परम दुरलभ, सहज सुतंत्र।
केवल राधा में प्रगट, कबहुँ न कहुँ अन्यत्र॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६७५)

श्रीराधाके विशुद्ध प्रेमका वर्णन करते हुए श्रीपोद्दारजी कहते हैं—

शुद्ध प्रेम श्रीराधाका है नित्य पूर्ण, विभु नित्य अपार।
किन्तु देखता कभी नित्य, बढ़ता रहता पल-पल सुखसार॥
अति गुरु, वह सर्वातिशायि, अति गौरवमय, अत्यन्त महान।
गौरव-अहंकारसे विरहित किंतु पवित्र दैन्यकी खान॥
बढ़ी हुई वक्रिमा अनोखी आती उसमें बिना प्रयास।
किंतु सुनिर्मल, सरल बढ़ाती नित शुचिता-सरलता-मिठास॥
नित्य विरुद्ध धर्म-गुण-आश्रययुक्त शुद्ध राधा-अनुराग।
धन्य-धन्य प्रियतम-स्वभाव-अनुगत, नित शुचि विरागमय राग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७३४)

इतना प्रगाढ़ प्रेम होनेपर भी श्रीराधा कभी प्रियतमसे अपना सुख नहीं चाहती—

राधा नहीं चाहतीं निजसुख निज प्रियतमसे किसी प्रकार।
केवल प्रियतमके सुखसे वे होतीं परम सुखी अविकार॥
केवल यही चाहतीं—प्रतिपल प्रियतम सुखी रहें अविराम।
पल-पल उनको सुखी देखना-करना—यही एक, बस, काम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७३२)

प्रगाढ़ प्रेमकी मूर्ति श्रीराधा इतनी एकात्मताका अनुभव करती हैं कि उन्हें अपने और प्रियतमके दो देह भी नहीं सुहाते। इसके लिये वे विधाताको भी कोसती हुई कहती हैं—

प्रियतम नित्य प्राण हैं मेरे, मैं हूँ उनके अपने प्राण।
विधनाने क्यों रचे देह दो, क्या सोचा इसमें कल्याण॥
उनका जैसा होता है मेरे प्रति अति-विचित्र व्यवहार।

नहीं चुका सकती मैं उसका बदला कुछ भी, किसी प्रकार॥
प्रियतमका व्यवहार देख मैं हूँ लज्जासे गड़ जाती।
विविध भाँति विनती करती, पर नहीं उन्हें समझा पाती॥
कभी देख पाते जो मुझको खाते पथमें भी ताम्बूल।
हाथ पसार माँगते मंगनकी ज्यों, सब मर्यादा भूल॥
मेरे तनका वर्ण देख वे पीताम्बर धारण करते।
मुरलीमें ले नाम सदा मेरा ही प्यारे सुर भरते॥
मेरी अङ्ग-सुगन्ध जिधरसे आती प्रियतम लख पाते।
उसी ओर पागल-से हो वे अलि समान उड़-उड़ जाते॥
सेवाको ललचातीं शत-शत रूप-गुणवती नारि ललाम।
नहीं किसीकी ओर ताकते मेरे सिवा कभी भी श्याम॥
छोड़ दिया सारा प्रियतमने मेरे लिये जाति-कुल-मान।
कैसे ऋणका शोध करूँ मैं, गुण-दरिद्र, दोषोंकी खान॥
नहीं रोकनेमें समर्थ मैं, हूँ सहनेमें भी असमर्थ।
जो जी चाहे करें प्राणधन, वे ही समझें अपना अर्थ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८१)

----×----

(५)
पद-रत्नाकरमें गोपियोंका स्वरूप

हिन्दी काव्यमें अबतक जितना व्रजकी गोपियोंका वर्णन हुआ है, वह अपनी-अपनी विभिन्न रुचि एवं भावनाओंके अनुसार हुआ है। विभिन्न कवियोंने अपनी दृष्टि, भावना और मान्यताओंके अनुरूप ही चित्रण किया है। श्रीपोद्दारजीने 'पद-रत्नाकर' में गोपियोंके जिस स्वरूपका निदर्शन किया है वह अत्यन्त दिव्य है। उनके अनुसार व्रज-गोपियाँ श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा हैं। गोपियोंके प्राण और श्रीकृष्णमें तथा श्रीकृष्णके प्राण और गोपियोंमें कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। श्रीकृष्ण और गोपी दो स्वरूपोंमें वस्तुतः एक ही तत्त्व हैं। इन गोपियोंकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

गोपीजनकी महिमा अतुलित।
जिनके भाव लहन कौं तरसत बेद-रिचा नित रिषि-मुनि तप-रत॥
बिमल ब्रह्मबिद्या तप करि गोपिन सम चहत प्रीति अति पावन।
जासों मिलत ब्रह्म पर-सौं-पर, रसमय मधुर रूप मनभावन॥
सदा प्रेम-परबस जिनके हरि, राखत मन जिन कौं अति आदर।
सदा रहत जिनके ढिग बरबस, चहत न रहन छाड़ि तिन छिनभर॥
बस्यो रहत मन-प्रान नयन महँ बनि तिन के मन-प्रान-पुतरि दृग।
रास-बिलास करत नित रसमय, भूलि सकल भगवत्ता अग-जग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७२२)

श्रीपोद्दारजीकी गोपियोंके मन, प्राण, बुद्धि श्रीकृष्णमें तल्लीन हैं। वे सर्वथा स्वसुखवाञ्छाशून्य हैं। मात्र श्रीकृष्ण सुख-सम्पादन ही उनका जीवन है। उनके लिये वे लिखते हैं—

सकल साधनोंकी फलरूपा त्याग-प्रेमकी मूर्ति।
भुक्ति-मुक्ति-इच्छासे विरहित माधव-इच्छा-पूर्ति॥
परम शुद्ध सेवाका रखतीं ये आदर्श महान।
प्रिय-सुखैक-इच्छारूपा, इनके लोभी भगवान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७२०)

गोपियोंका यही स्वरूप श्रीमद्भागवतमें प्रकट हुआ है, जहाँ श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० १०।४६-४)

इसलिये श्रीपोद्दारजी गोपियोंकी तुलना किसीसे भी नहीं करते। वे कहते हैं—

गोपिनकी उपमा, बस, गोपी।
गोपीरूप-ओप सुचि अनुपम अति केवल गोपिन ही ओपी॥
जो रस-रूप आप, जा के रस-सुर-रिषि-मुनि पावत रस सोपी।
गोपिन रस-आस्वादन हित प्रभु बिरच्यौ मन, मरजादा लोपी॥
जिन के लीला-चरित ललित लखि चकित नमत दुर्बासा कोपी।
जिन के पद-रज-कन-परसन हि ऊधौ बन्यौ चहत जड़ चोपी॥
सर्वातीत अमन नित मन रचिता महँ मधुर मनोरथ छोपी।
मिल्यौ चहत जिन सौं बिह्वल ह्वै, धन्य-धन्य, जय-जय सो गोपी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७२१)

पद-रत्नाकरके अध्ययनसे ऐसा लगता है कि श्रीपोद्दारजीने श्रीराधा एवं गोपियोंके माध्यमसे अपने अन्तस्तल आच्छादित प्रेमके भावोंको ही प्रकट किया है। गोपियोंका तन-मन-धन सभी कुछ प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णका था। वे संसारमें जीती थीं—केवल प्रियतम श्रीकृष्णके लिये। घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये तथा घरके और अपने शरीरके सारे कार्य करती थीं—श्रीकृष्णके लिये। उनके निर्मल और पवित्र मन-बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवाय किसीका अस्तित्व ही नहीं था। उनका सब कुछ श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही था। प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोने तक वे जो भी करती थीं सब श्रीकृष्ण-सुखार्थ ही करती थीं। यहाँ तक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णके लिये ही होती थी। उनका हृदय श्रीकृष्णमय हो गया था। इसीलिये भागवतमें कहा गया है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

(१०-४४-१५)

'जो गोपियाँ गौओंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको झूला झूलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी सुनाते समय, घरोंमें पानी छिड़कते और झाड़ू देते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका गान करती है, उन श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपरमणियाँ धन्य है।'

इसी तरहके भाव श्रीपोद्दारजीने लिखे हैं—

श्याम हमारे तन-मन-धन हैं, श्याम हमारे जीवन-प्रान।
श्याम हमारे अङ्ग-अङ्गमें, रोम-रोममें बसे महान॥
श्याम मिले ही रहते हैं नित, नहीं छोड़ते हैं पल एक।
घरमें, वनमें, भीतर-बाहर, सदा साथ रहते रख टेक॥
स्वप्न-जागरण, भोग-योगमें घुले-मिले रहते हैं नित्य।
साथ खेलते, साथ विहरते, सदा साथ सोते हैं सत्य॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४७६)

ऐसे भावोंके एक नहीं अनेक पद हैं। यथा—

श्याम हमारे वस्त्राभूषण, श्याम हमारे भोजन-पान।
श्याम हमारे घर, घरके सब, श्याम हमारे ममता-मान॥
श्याम हमारे भोग्य, सुभोक्ता, श्याम हमारे कर्त्ता, कर्म।
श्याम हमारे तन-मन-धन सब, श्याम हमारे केवल धर्म॥
श्याम हमारे त्याग, भोग सब, श्याम हमारे श्वासोच्छ्वास।
श्याम हमारे स्व-पर सभी कुछ, श्याम हमारे सब अभिलाष॥
श्याम हमारे परम गुप्त निधि, श्याम हमारे प्रकट विभूति।
श्याम हमारे भूत भविष्यत्, वर्तमानकी वाञ्छित भूति॥
श्याम लोक-परलोक हमारे, बन्धन-मोक्ष हमारे श्याम।
श्याम हमारे चरम परम गति, श्याम हमारे चिन्मय धाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४७८)

श्रीपोद्दारजीके इन भावोंकी साम्यता व्रजके अन्य भक्त कवियों द्वारा प्रकट भावोंमें प्राप्त होती है—

स्याम तन, स्याम मन, स्याम है हमारौ धन,
आठों जाम ऊधौ! हमें स्याम ही सौं काम है।

स्याम हिए, स्याम जिए, स्याम बिनु नाहि लिए,
आँधे की सी लाकटी अधार स्याम नाम है॥
स्याम गति, स्याम मति, स्याम ही है प्रान पति,
स्याम सुखदाई सौं भलाई सोभा धाम है॥

इतनी एकात्मता होनेपर भी श्रीपोद्दारजीकी गोपीका स्वरूप इतना उदात्त एवं निष्कलंक है जिसमें गोपीके मनमें कभी यह कामना भी उदित नहीं होती कि प्रियतम मेरे साथ विहार करें।

'मेरे साथ बिहार करैं प्रिय, मुझको सुखी करें भगवान'—
गोपी मनमें कभी न होती, ऐसी चाह जान अनजान॥
'राधा सँग श्यामकी क्रीड़ा चलती रहे सदा अविरोध'—
निज क्रीड़ासे कोटि गुणा होता है गोपीको सुख-बोध॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७१९)

गोपियोंकी सम्पूर्ण चेतनाका पर्यवसान केवल प्रियतमको सुखी करनेके लिये ही है इसीलिये श्रीकृष्ण भागवतमें कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेह श्रृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(१०। ३२-२२)

'हे प्रियाओ! तुमने घरकी बड़ी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरी सेवा की है। तुम्हारे इस साधुकार्यका मैं देवताओंके समान आयुमें भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही अपनी उदारतासे मुझे उऋण करना।'

ठीक इसी प्रकारके भाव श्रीपोद्दारजीने प्रस्तुत किये हैं—

नहीं चुका सकता मैं बदला, कर सकता न कभी ऋण-शोध।
बँधा प्रेम-बन्धन, मैं करता स्वतन्त्रताका कभी न बोध॥
सहज स्वतन्त्ररूप मैं रहता स्वयं-रचित सुखमय परतन्त्र।
नहीं छूटना कभी चाहता, नहीं चाहता बनूँ स्वतन्त्र॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५३८)

ऐसा ही महात्मा श्रीनंददासजीने भी लिखा है—

तब बोले प्रिय नव किसोर—हम रिनी तिहारे।
अपने हिय तें दूरि करों सब दोष हमारे॥
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति-उपकार करौं जौ।

हे मन हरनी तरुनी, उरिनी नाहिं होऊँ तौ॥

ऐसी गोपियोंकी वन्दना करते हुए श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

बंदौं गोपी-जन, हृदय जो हरि राखे गोय।
पलकहुँ नहिं निकसत कबहुँ, मानि परम सुख सोय॥
बंदौं गोपी-मन सरस, मिल्यौ जो हरि-मन जाय।
हरि-मन गोपी मन बन्यौ, करत नित्य मन-भाय॥
बंदौं गोपी-नाम, जो हरि मुरली महँ टेर।
सुख पावत हरि स्वयं करि कीर्तन बेरहिं-बेर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४७)

ऐसी सम्पूर्ण त्यागमयी गोपाङ्गनाओंको शत-शत वन्दन।

----×----

(६)
पद-रत्नाकरमें गोपी-प्रेमकी साधनाका स्वरूप

जिन गोपियोंकी इतनी अतुलित महिमा है उस गोपीभावकी साधना श्रीपोद्दारजीके अनुसार सभी वैराग्य और प्रेमसम्पन्न प्राणियोंके लिये सुलभ है। गोपीभाव केवल स्त्रियोंके लिये नहीं है। यह उपासना भावनासिद्ध है, वेष-सिद्ध नहीं। इस साधनामें न तो लहँगा, साड़ी या चोली पहननेकी आवश्यकता है और न पैरोंमें नूपुर और नाकमें नथकी ही। पर साथमें श्रीपोद्दारजीने यह भी दृढ़तापूर्वक कहा है कि जिसका मन विषयोंमें आसक्त होता है, जिन्हें भौतिक सौन्दर्य अपनी ओर खींचता है, जो शरीरके आराम और विषयभोगकी चाह रखते हैं—वे लोग गोपी भावकी साधनाके सर्वथा अधिकारी नहीं है। इसको उन्होंने पद-रत्नाकरमें स्पष्ट लिखा है जो-

प्रेम अमिय चाहै पियौ, करै विषय सौं नेह।
बिष ब्यापै, जारै हियौ, करै जर्जरित देह॥
मन विषयन में रमि रह्यौ, करत प्रेम की बात।
सो मिथ्याबादी सदा जग में आवत जात॥

यह साधना तो केवल उन्हींके लिये है जो

भोग-बासना सब तजै, तजै मान-सनमान।
प्रेम-पंथ पर जो चलै, सहै हृदय पर बान॥
प्रेम-पंथ सोइ चलि सकैं, जिन छाँड़ी सब चाह।
जर्‌यौ करैं बिरहाग्नि में, मुख नहिं निकसै आह॥
प्रेम-डगर सोई चलै, अगर-मगर दै छोरि।
विषय-राग राखै नहीं, सब सौं नातौ तोरि॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६४)

इस तरहके अनेक पद है जिनमें गोपीभावकी साधनाका विवेचन विस्तारसे हुआ है। यह मार्ग कृपा साध्य है। इसमें प्रारम्भसे ही सर्व समर्पणका भाव रहता है तथा इसकी साधना कैसे की जाती है इसका सांगोपांग वर्णन निम्न पदमें है—

प्रथम साधना है इसकी—इन्द्रिय-भोगोंका मनसे त्याग।
हरिकी प्रीति बढ़ानेवाले सत्कर्मोंमें अति अनुराग॥
कठिन काम वासना-पापका करके पूरी तरह विनाश।
दम्भ-दर्प, अभिमान-लोभ-मद, क्रोध-मानका करके नाश॥
परचर्चाका परित्याग कर, विषयोंका तज सब अभिलाष।
मधुमय चिन्तन नाम-रूपका, मनमें प्रभुपर दृढ़ विश्वास॥
हरि-गुण-श्रवण, मनन लीलाका, लीला-रसमें रति निष्काम।
प्रियतम-भाव सदा मोहनमें, प्रेम-कामना शुचि, अभिराम॥
सर्व-समर्पण करके हरिको, भोग-मोक्षका करके त्याग।
हरिके सुखमें ही सुख सारा, हरिचरणोंमें ही अनुराग॥
भोग-मोक्ष-रुचि-रहित परम जो अन्तरङ्ग हरिप्रेमी संत।
उनका विमल-सङ्ग, उनकी ही रुचिमें निज रुचिका कर अन्त॥
पावन प्रेमपंथके साधक करते फिर लीला-चिन्तन।
श्यामा-श्याम-कृपासे फिर वे कर पाते लीला-दर्शन॥
गोपी-भाव समझकर फिर वे होते हैं शुचि साधनसिद्ध।
रस-साधनमें सिद्धि प्राप्तकर पाते गोपीरूप विशुद्ध॥
तब लीलामें नित्य सम्मिलित हो बन जाते प्रेमस्वरूप।
परम सिद्धि यह प्रेम-पंथकी, यही प्रेमका निर्मल रूप॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७३०)

इस भावकी साधनामें जिनको अग्रसर होना है उनके लिये यह पद ही पर्याप्त मार्गदर्शक है।

----×----

(७)
पद-रत्नाकरमें लीला-दर्शन

पद-रत्नाकरमें श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंके बड़े ही भव्य वर्णन हैं। ये सभी लीलाएँ श्रीपोद्दारजीकी स्वयं देखी हुई हैं और बहुत-सी लीलाओंमें वे स्वयं सम्मिलित हुए हैं, अतः उनका वर्णन इतना सजीव है कि सहृदय पाठकको भी सहभागी बना लेती है। कुछ लीलाओंके वर्णन तो इतने प्रभावोत्पादक हैं कि साधारण पाठक भी उनमें रसानुभूति करता है। यहाँ कुछ लीलाओंका थोड़ा-सा दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

बचपनमें श्रीकृष्ण गोपियोंके घर जाकर उनको आह्लादित करनेके लिये ही मक्खन चुराया करते थे यह बात सभी जानते हैं। भक्त कवियोंने प्रायः इन लीलाओंके वर्णन किये हैं। एक गोपी यशोदाके पास जाकर श्रीकृष्णकी धूर्तताका कैसे वर्णन करती है—यह पोद्दारजीके शब्दोंमें पढ़िये—

मैया! तू भोली है, नहीं जानती कुछ इसकी करतूत।
कैसा धूर्तशिरोमणि है यह तेरा सुघड़ साँवरा पूत॥
ननद जा रही थी मेरी वह प्रातः ही अपनी ससुराल।
बना रही थी उसको देने शकुन-बटेरी मैं ततकाल॥
लगा रही थी उसके मेंहदी, मेरी देवरानी थी व्यस्त।
छतपर थी वह, इधर साँवरा लगा रहा था बाहर गश्त॥
देखा—घर सूना है, आया चुपके-से, घर किया प्रवेश।
पक्का चोर, न पैरोंकी आहट भी होने दी कुछ लेश॥
एक-एक कर बुला लिया फिर अंदर, खोला दधि-भंडार।
घुसे सभी धीरे-धीरे, कर लिये बंद फिर सब ही द्वार॥
नजर गयी मेरी, दीखे कपाट मुझको दधि-घरके बंद।
मैं निश्चिन्त रही, ये घरमें करने लगे काम स्वच्छन्द॥
खाली थे कर दिये तुरत मधु दधि-माखनके सारे माट।
पता नहीं ये कितने थे सब, कैसे रचा अनोखा ठाट॥
खा-पीकर कुछ मटके फोड़े, होने दी न जरा आवाज।

धीरे-से पट खोल, सभी ये भागे निकल मनोहर साज॥
देखा—भाग रहे, मैं दौड़ी, झट जा पहुँची घरके द्वार।
तबतक दूर निकल, यह लगा चिढ़ाने मुझको, दे फटकार॥
दिखा-दिखाकर मुझे अँगूठा हँसा विचित्र हँसी यह चोर।
उड़ा रोष सब, रही देखती मैं अपलक हँस-मुखकी ओर॥
गयी भूल मैं इसे पकड़ना, इसके जादूके वश हो।
तबतक सब चल दिये नाचते-हँसते, करते हो-हो-हो॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २१९)

प्रिया-प्रियतमके परस्पर श्रृंगारकी लीलायें बड़ी ही मधुर हैं। जब वे एक दूसरेका श्रृंगार अपने हाथोंसे करते हैं तो दोनों ही रस-प्रमत्त हो जाते हैं। यद्यपि ऐसी लीलायें सर्वथा निभृत निकुंजकी है जो जन-साधारणके उपयोगकी है भी नहीं। पर श्रीपोद्दारजीने कुछ अत्यन्त मधुर लीलायें मधुर उपासनाके साधकोंके लिये प्रकट की है। एक ऐसी ही लीला है जिसमें प्रियतम स्वयं अपने हाथसे प्रियाजीका श्रृंगार कर रहे हैं। अपने हाथसे वस्त्र, आभूषण धारण कराते हैं, सारा श्रृंगार करते हैं, मुखमें पान खिलाते हैं और फिर सारा श्रृंगार करके अपलक नेत्रोंसे देखने लगते हैं—

करत निज कर प्रीतम सृंगार।
सुबरन-बरन सु-तन पहिरायो नील बसन करि मधु मनुहार॥
कला-कलित कंचुकि पहिराई, रतन-हार, मनि-मुक्ता-माल।
दिब्य आभरन अन्य सकल अंगनि पहिराए बिबिध रसाल॥
सुरभित सुमन दिब्य चुनि निज कर, गूँथि गले पहिरायौ हार।
नयननि सावधान अति आँज्यौ अंजन कोमल अँगुरिन-सार॥
माँग सिंदूर देइ मनभावन, रची सुमन-बेनी रमनीय।
बेंदी भाल लगाइ मनोहर, पहिराए कुंडल कमनीय॥
पुष्पसार लै मधुर सुगंधित दियौ लगाय प्रिया सुचि अंग।
दै तांबूल सुबासित मुख, दृग अपलक निरखत अँग-प्रत्यंग॥
करने लगे प्रिया-सँग प्रमुदित स्मित-मुख मधुमय रस-आलाप।
पुष्प-सेज पर रहे बिराजित, उमग्यौ आनँद-सिंधु अमाप॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २७२)

एक बड़ी सुन्दर लीलाका दर्शन किया है श्रीपोद्दारजीने है। प्रियाजी अपने

हाथोंसे प्रियतमका चित्र बनाने लगती हैं। एक-एक अंगको सुन्दर-से-सुन्दर बना रही हैं। विभिन्न रंग भर रही हैं। अत्यन्त सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित कर रही हैं। जब ऊपरके सारे अंग अंकित हो गये और चरण बनाने लगीं तो तुरन्त तूलिका खींच ली। मनमें भयभीत हो गयीं कि कहीं दोनों चरण अंकित कर दिये तो प्रियतम भाग जायेंगे। इस भावमें इतनी तल्लीन हो जाती हैं और यह सर्वथा भूल जाती हैं कि मैं चित्रांकन कर रही हूँ। उनके ठीक पीछे प्रियतम खड़े हुए सारा दृश्य देख रहे थे। सारी बात समझकर वे जोरसे हँसने लगे। श्रीपोद्दारजीके शब्दोंमें पढ़िये—

श्रीमती मूरति अङ्कित करती।
मधुर तूलिका कोमल करमें ले नाना रँग भरती॥
विविध भाँति अति मधुर मनोहर रूप बनाती जाती।
तन्मय मन, दृग-दृष्टि-अचञ्चल, उमँग न हृदय समाती॥
नव-नीरद-शुचि-नील-श्याम तनु उज्ज्वल आभा आँकी।
भाल विशाल तिलक मृग-मदके, भ्रुकुटि मनोहर बाँकी॥
सरस नयन शोभाके आकर मोहन आँजे अञ्जन।
अतिशय चपल, चोर मन-धनके, सुर-ऋषि-मुनि मन रञ्जन॥
मुख मुसकान, नासिका नीकी, कानन कुण्डल झलकैं।
केश कृष्णघन घूँघरवारे, इत-उत बिथुरीं अलकैं॥
मणिमय मुकुट मयूर-पिच्छ-युत सुन्दर सिर पै साजै।
कम्बुकण्ठ बनमाल विराजै रत्न-हार उर राजै॥
पीत वसन दमकत दामिनि-सो कटि किंङ्किणि अति सोहै।
निरखि-निरखि निज अङ्कित मूरति भामिनि निज मन मोहै॥
लई तूलिका खींचि अचानक भई सशङ्कित भारी।
चरण उभय आँके नहिं पियके, गहरी बात विचारी॥
भाजि जायँ जीवनधन पाछें जो चरणनके पाये।
तो फिर कहा बनैगो, मेरा, यही सोच उर छाये॥
ठाढ़े निरखि रहे मनमोहन प्रीति-रीति अति पावन।
प्रकट भये, बिहँसे, पुलकित तनु भई, देखि मनभावन॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३५७)

इसी तरहकी एक लीला श्रीराधाजी स्वयं अपनी प्रिय सखीको सुना रही हैं। वे कहने लगी—सखी! मेरेसे एक दिन कैसी भूल हो गयी। मैं नई कलम लेकर

प्रियतमको पत्र लिखने बैठी। जैसे ही पत्र लिखना प्रारम्भ किया, उनकी एकान्तिक स्मृतिमें स्वयंकी ही विस्मृति हो गयी और अपने आपको प्रियतम समझने लगी। उसी भावमें इतनी तन्मय हो गयी कि मैं उनकी तरफसे राधाके नाम पत्र लिखने लगी। प्रियतम पास आकर खड़े हो गये और पत्र पढ़कर जोरसे हँसने लगे। उनकी हँसी सुनकर मैं होशमें आयी और मुझे बड़ी लज्जाका अनुभव होने लगा। श्रीपोद्दारजीकी मधुर भाषामें—

सखी! यह कैसी भूल भई।
लिखन लगी पाती पिय कौं लै दाड़िम-कलम नई॥
भूली निज सरूप हौं तुरतहिं, बन घनस्याम गई॥
बिरह-बिकल बोली पुकार—'हा राधे! कितै गई?'
पाती लिखी—'प्रिये हृदयेस्वरि! सुमधुर सु-रसमयी।
प्रानाधिके! बेगि आऔ तुम नेह-कलह-बिजयी'॥
ठाढ़े हुते आय मनमोहन, मो तन दृष्टि दई।
हँसे ठठाय, चेतना जागी, हौं सरमाय गई॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३९०)

स्वप्नमें न जाने कितनी बार श्रीराधाजी श्रीश्यामसुन्दरके साथ विभिन्न लीलाओंके दर्शन करती। एक दिनका मधुर स्वप्न वे अपनी एक सखीको एकान्तमें सुनाने लगीं। सखी! वह कैसा मीठा सपना था जिसे देखते ही मेरे अन्दर प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने प्रातःकाल स्वप्नमें देखा कि मैं प्रियतमके विरह-दुःखसे दुखित निकुंजके दरवाजेपर खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। इतनेमें अचानक पीछेसे आकर प्रियतमने अपने कोमल कर-कमलोंसे मेरे दोनों नेत्र ढँक लिये। उनके हाथका स्पर्श पाते ही मेरे पूरे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी। मेरे पहचानते ही वे मेरे सामने आ गये। उन्हें देखते ही मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और मैं उनके हृदयसे चिपककर विरह-ज्वाला शान्त करने लगी। मैं मिलनानन्द ले रही थी तभी किसी कठोर हृदयवाली सखीने मुझे जगा दिया। तबसे मेरा हृदय जल रहा है—

सखी! वह कैसौ मीठौ सपनौ।
देखत ही प्रेमांबुधि उमग्यौ, बिसर्‌यौ, तन-मन अपनौ॥
ठाढी हुती भोर की बेला हौं निकुंज के द्वार।
अति अनमनी, बिरह-दुख-पीड़ित, लखि जीवन निस्सार॥
आय अचानक पाछे सौं मेरे ढिग वे चुपचाप।

कोमल करतल सौं ढाँके दृग दोऊ अपने-आप॥
कर परसत बिजुरी-सी दौरी, बाढ़्यौ अति अनुराग।
हौं पहचानि गई प्रियतम-कर, प्रान उठे पुनि जाग॥
आय गये सनमुख जीवन-धन प्रियतम हरि अनवद्य।
हिय-सरोज बिकस्यौ दरसन करि प्रिय दिनकर के सद्य॥
मिले नयन-सौं-नयन, हृदय-सौं-हृदय, बिना व्यवधान।
सांत भयौ बिरहानल करि कै प्रेम-सुधा-रस-पान॥
इतने महँ कोउ आय जगाई मो कहँ कुलिस-कठोर।
जरत हियौ तबही सौं सजनी! बिछुरे प्रान किशोर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३७२)

ऐसी लीलायें तो पद-रत्नाकरमें बहुत अधिक हैं। यदि सभीका विस्तारसे वर्णन किया जाय तो एक पद-रत्नाकरसे मोटा ग्रन्थ तैयार हो जाय। अतः यहाँ केवल संकेतसे दो-चार लीलाएँ ही दी जा रही हैं।

एक दिन प्रिया-प्रियतम सखियोंके साथ कुसुम-सरोवर स्नान करने गये। सखियाँ, मंजरियाँ तो बाहर बैठकर प्रिया-प्रियतमकी चर्चा करने लगीं और वे दोनों गुप्त-घाटमें स्नान करने लगे। स्नानमें दोनों इतने तल्लीन हुए कि दोनों ही अपने स्वरूपको भूल गये और स्नानोपरान्त दोनोंने दोनोंका उल्टा शृंगार कर दिया। जब बाहर आये तो उन्हें देखकर सब सखियाँ जोरसे हँसने लगीं। उन्हें हँसते देखकर दोनों संकोचमें पड़कर पूछने लगे कि आप सब हँस क्यों रही हैं? तब सखियोंने कहा—आप अपने वस्त्रोंकी ओर तो देखिये। देखते ही दोनों सहम गये—

एक दिना मिलि प्यारी-प्रीतम कुसुम-सरोवर गये नहान।
सखी-मंजरी चली संग लै वसनाभूषन अति अवधान॥
गुप्त-घाट जल अमल सुगंधित प्रविसे दोउ अति सुख स्वच्छंद।
रहि बाहर सखिगन, चर्चा-रत भई प्रिया-प्रिय की सुख-कंद॥
लागे करन परस्पर दोऊ जल में बिबिध भाँति कल्लोल।
अन्हवाये दोऊ दोउन कौं बाढ्यो अमित रंग-रस-रोल॥

× × × ×

भूले निज-निज रूप, भई बिपरीत दुहुन कौं निज परतीत।
प्रीतम प्यारी, प्यारी प्रीतम, समुझे हो बिभोर रस-रीति॥
लगी सजावन प्यारी पिय कौं उन्हें समुझि प्यारी अति नेह।

पहिरायौ निज नील बसन, कंचुकि रुचि आभूषन सब देह॥
यही भाँति पिय प्यारी कौं पहिरायौ अपनौ पट रंग पीत।
पुरुष समान लाँग दै, सब आभरन सजाये सुंदर रीत॥
स्याम बने स्यामा सब बिधि सौं, बनी मनोहर स्यामा स्याम।
निकसे, निरखि सखी बिहँसी सब अति विपरीत वेष अभिराम॥
सहमि गये प्यारी-प्रीतम, लखि हँसिबै कौ रहस्य अज्ञात।
'क्यों तुम हँसी देखि हमरे तन'—पूँछीं सखियन सौं यह बात॥
हँसि बोली सखि 'देखौ पिय-प्यारी तुम निज बसनन की ओर'।
देखत ही सकुचे दोउ, बिहँसे, छूटी हँसी अमित सब छोर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३८१)

जब श्रीकृष्ण मथुरा पधार गये तो बड़ी विचित्र बात हुई। श्रीराधा एवं समस्त गोपियाँ उनके विषम-वियोगसे पीड़ित हो गयी। इसका वर्णन प्रायः व्रज-रसके सभी भक्त-कवियोंने किया है। यद्यपि माधुर्य रूपमें श्रीकृष्ण नित्य-व्रजमें ही रहे पर लोक-दृष्टिमें वे मथुरा चले गये। मथुरासे अपना व्यक्तिगत संदेश देकर प्यारे सखा उद्धवको व्रजमें भेजते हैं। व्रजमें आकर उद्धव पहले नन्दबाबा और यशोदाको सान्त्वना देते हैं। तत्पश्चात् वे गोपियोंके समूहमें जाते हैं, उनको समझानेका प्रयास करते हैं जिसका विशद्-वर्णन पद-रत्नाकरमें भरा हुआ है। गोपियोंके प्रेमको देखकर उद्धव आप्यायित हो जाते हैं और व्रजके लता-पत्र बननेकी आकांक्षा करते हैं; जिससे इन व्रज-देवियोंकी पवित्र चरण-धूलि उन्हें हमेशा मिलती रहे। तदनन्तर वे एकान्तमें श्रीराधाजीसे मिलते हैं। श्रीराधाजीकी उस समय बड़ी ही विचित्र स्थिति थी। उस समयकी एक मधुरातिमधुर लीलाका श्रीपोद्दारजीने ऐसा सरस सजीव चित्रण किया है कि नीरस हृदय पाठक भी रस-सिक्त हुए बिना नहीं रह सकता।

एकान्तमें उद्धवने श्रीराधाको श्रीश्यामसुन्दरका मथुरासे भेजा हुआ संदेश सुनाया। संदेश सुनकर राधाजी चकित-सी होकर सोचने लगती हैं कि प्रियतम तो मेरे पास बैठे रसालाप कर रहे हैं। यह उद्धव मुझे किसका सन्देश सुना रहा है। वे कहने लगीं कि तुम मुझे किसका संदेश सुना रहे हो? प्रियतम तो सदा मेरे पास रहते हैं; वे मुझे छोड़कर कहीं जाते ही नहीं। देखो—सामने देखो! वे नन्दकिशोर कदम्ब तले खड़े हुए मेरी ही ओर देख रहे हैं। उद्धव भौचक्केसे होकर उधर देखने लगते हैं, पर उन्हें तो श्यामसुन्दर दिखायी नहीं पड़े। इतनेमें राधाजीका भाव बदलता है। सहसा वे देखती हैं कि प्रियतम अन्तर्धान हो गये। वे कहती हैं—उद्धव! मैंने

तुमको दिखा दिया इसलिये उन्हें शर्म आ गयी क्या? वे मुझे अब दीखते क्यों नहीं? उनका भाव फिर बदल गया, वे कहने लगीं—'उद्धव! तुम सच कहते हो। वे मुझ अभागिनीको छोड़कर चले गये। मेरे लिये अब केवल रोना ही शेष रह गया है। तुम सत्य ही मुझे उनका संदेश सुना रहे हो।' फिर भाव बदला और कहने लगीं—'उद्धव! वे मुझे परम सुख देनेके लिये ही मथुरा गये हैं। मैं उन्हें बार-बार कहती थी कि मैं सर्वथा गुणहीन, कुरुप और दोषोंकी खान हूँ। पर मेरी बात सुनना तो दूर रहा, वे तुरंत मुझे हृदयसे लगा लेते। प्रियतमके बढ़े हुए व्यामोहको देखकर मैं देवतासे मनाया करती कि आप उनके मोहको शीघ्र हर लें। मुझे लगता है कि देवताने मेरी पुकार सुन ली और वे अब किसी नगर निवासिनी सुन्दरीको प्राप्त करके अनुपम सुख भोग रहे होंगे।' यह कहते-कहते ही पुनः श्रीराधाका भाव परिवर्तन हो जाता है और कहती हैं—नहीं, नहीं, उद्धव! प्रियतमके द्वारा ऐसा होना संभव नहीं है। मेरा और उनका अनोखा सम्बन्ध है। हम एक दूसरेके बिना नहीं रह सकते। राधा ऐसा कह ही रही थी कि उन्हें श्यामसुन्दर फिर दिखायी देने लगे। वे बोल उठीं—अरे, अरे उद्धव! देखो, वे पुनः प्रकट हो गये हैं। ऐसा कहकर राधा समाधिमग्न होकर निस्तब्ध हो गयीं। यह सब देख-देखकर उद्धव विमुग्ध होकर भूमिपर लोटने लगे। ऐसी मधुर लीला श्रीपोद्दारजीके ही शब्दोमें पढ़िये—

उद्धव! तुम मुझको किसका यह सुना रहे कैसा संदेश?
भुला रहे क्यों मिथ्या कहकर? प्रियतम कहाँ गये परदेश?
देखे बिना मुझे, पलभर भी कभी नहीं वे रह पाते!
क्षणभरमें व्याकुल हो जाते, कैसे छोड़ चले जाते?
मैं भी उनसे ही जीवित हूँ, वे ही हैं प्राणोंके प्राण।
छोड़ चले जाते तो कैसे तनमें रह पाते ये प्राण?
देखो—वह देखो, कैसे मृदु-मृदु मुसकाते नन्द-किशोर।
खड़े कदम्ब-मूल, अपलक वे झाँक रहे हैं मेरी ओर॥
देखो, कैसे मत्त हो रहे, मेरे मुखको पङ्कज मान।
प्राण-प्रियतमके दृग-मधुकर मधुर कर रहे हैं रस-पान॥
भ्रुकुटि चलाकर, दृग मटकाकर मुझे कर रहे वे संकेत।
अति आतुर एकान्त कुञ्जमें बुला रहे हैं प्राण-निकेत॥
कैसे तुम भौंचक-से होकर देख रहे कदम्बकी ओर?
क्या तुम नहीं देख पाते? या देख रहे हो प्रेम-विभोर?

हैं! यह क्या? सहसा वे कैसे, कहाँ हो गये अन्तर्धान?
हाय? क्यों नहीं दीख रहे मुझको मन-मोहन मोद-निधान?
आँखमिचौनी लगे खेलने क्या वे लीलामय फिर आज?
दिखा दिया मैंने तुमको, क्या इससे उन्हें आ गयी लाज?
नहीं, नहीं! तब क्या वे चले गये सचमुच ही मुझको छोड़?
मुझे बनाकर अमित अभागिनि, हाय! गये मुझसे मुख मोड़?
सच कहते हो, उद्धव! तुम, हो सत्य सुनाते तुम संदेश।
चले गये, हा! चले गये वे, छोड़ गये रोना अवशेष॥
प्रतिपल जो अपलक नयनोंसे मुझे देखते ही रहते।
सुखमय मुझे देखनेको जो सभी द्वन्द्व सुखसे सहते॥
मेरा दुःख दुःख अति उनका, मेरा सुख ही अतिशय सुख।
वे कैसे मुझको दुख देकर, खो देते निज जीवन-सुख॥
मुझे परम सुख देनेको ही गये मधुपुरीमें, बस, श्याम।
समझ गयी, मैं सुखी हो गयी, निरख सुखद प्रियतमका काम॥
याद आ गयी मुझको सारी मेरी-उनकी बीती बात।
जान गयी कारण, इससे हो रही प्रफुल्लित, पुलकित-गात॥
सद्‌गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित, दोषकी मैं थी खान।
मोह-विवश मोहनको होता मुझमें सुन्दरताका भान॥
न्योछावर रहते मुझपर, सर्वस्व समुद कर मुझको दान।
कहते, थकते नहीं कभी—'प्राणेश्वरि!' 'हृदयेश्वरि!' 'मतिमान'॥
'प्रियतम! छोड़ो इस भ्रमको तुम'—बार-बार मैं समझाती।
नहीं मानते, उर भरते, मैं कण्ठहार उनको पाती॥
गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या, मैं मतिमन्द-मलीन॥
मुझसे कहीं अधिकतर सुंदर सद्‌गुण-शील-सुरूप-निधान।
सखी अनेक योग्य, प्रियतमको कर सकतीं अतिशय सुख-दान॥
प्रियतम कभी भूलकर भी, पर नहीं ताकते उनकी ओर।
सर्वाधिक क्यों? प्यार मुझे देते अनन्यप्रियतम सब ओर॥
रहता अति संताप मुझे प्रियतमका देख बढ़ा व्यामोह।
देव मनाया करती मैं—'प्रभु! हर लें सत्वर उनका मोह'॥

मेरा अति सौभाग्य, देवने सुन ली मेरी करुण पुकार।
मिटा मोह मोहनका, अब वे प्राप्त कर रहे मोद अपार॥
पाकर सुन्दर चतुरा किसी नागरीको वे प्राणाराम।
भोग रहे होंगे अनुपम सुख, पूर्ण हुआ मेरा मन-काम॥
परम सुखवती आज हुई मैं, खुले भाग्य मेरे हैं आज।
सुनकर श्याम-सँदेश सुखाकर, मुद-मङ्गलमय, जीवन-साज॥
नहीं, नहीं! ऐसा हो सकता नहीं कभी प्रियतमसे काम।
मेरा-उनका अमिट, अनोखा, प्रिय, अनन्य सम्बन्ध ललाम॥
मुझे छोड़ 'वे', उन्हें छोड़ 'मैं'—रह सकते हैं नहीं कभी।
'वे मैं' 'मैं वे'—एक तत्त्व हैं; एक रूप हैं भाँति सभी॥
अरे, अरे उद्धव! देखो तो पुनः प्रकट हो गये सुजान।
प्रेमभरी चितवन सुन्दर, छायी अधरोंपर मृदु मुसुकान॥
ललित त्रिभङ्ग, कुटिल कुन्तल, सिर मोर-मुकुट, कल-कुण्डल कान।
धर मुरली मुरलीधर अधरोंपर हैं छेड़ रहे मधु तान॥
प्रेम-सुधा-सागर राधामें उठतीं बिबिध-बिचित्र तरंग।
देख विमुग्ध हुए उद्धव अति, बरबस विवश हुए सब अङ्ग॥
उदित नवीन प्रेम-सरिता शुभ बढ़ी अचानक, ओर-न-छोर।
भू-लुण्ठित तन धूलि-धूसरित शुचि, उद्धव आनन्द-विभोर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३४३)

यहाँ तो केवल विहंगम दृष्टिसे मधुर लीलाओंका संकेत किया गया है। ऐसी लीलाओंका आनन्द तो पद-रत्नाकरके भाव-पूर्ण मननसे ही मिल सकता है।

----×----

(८)
पद-रत्नाकरमें रास-लीला

श्रीकृष्णकी समस्त लीलाओंमें रास-लीला मधुरतम मानी जाती है। हिन्दीमें जितने भक्त-कवियोंने श्रीकृष्ण-लीलापर पद-रचना की है उनमें प्रायः सभीने किसी-न-किसी रूपमें रासलीलाका वर्णन किया है। पद-रत्नाकरमें भी रास-लीलाके दस पद हैं। एक पदमें तो श्रीमद्भागवतकी सम्पूर्ण रास पञ्चाध्यायीका सरस पद्यानुवाद ही है। श्रीमद्भागवतके भावोंका ठीक उसी रूपमें चित्रण हुआ है। रास पञ्चाध्यायीका पहला श्लोक है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

इसीका अविकल अनुवाद श्रीपोद्दारजीने किया है—

थीं वे विकसित शारदीय मल्लिका-सुमन शोभित रजनी।
देख उन्हें कर प्रकट 'योगमाया'—'अचिन्त्य निज शक्ति' धनी॥
षडैश्वर्य भगवान पूर्णने किया तुरत संकल्प महान।
रमण—'रसास्वादन-स्वरूप-वितरण'का, कर सबको रस-दान॥

रास-पञ्चाध्यायीका दूसरा श्लोक है—

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शंतमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

श्रीपोद्दारजीके शब्दोंमें इसका भावानुवाद देखिये—

दीर्घकालपर दे दर्शन निज प्यारी को जैसे प्रियतम।
रँग दे केसरसे उसका मुख-मण्डल निज कर सुखद परम॥
वैसे प्राची दिशा सुमुखि मुख सुखद स्वकिरण-अरुणसे रंग।
उदय हुआ विधु जग-जीवोंका ताप मिटाता शीतल अंग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २६३)

कुछ आत्मीय साधकोंके आग्रहवश श्रीशरद्-पूर्णिमाको ही श्रीपोद्दारजीने पूरी रासपञ्चाध्यायीका पद्यानुवाद प्रारम्भ किया और मध्यरात्रिके उत्सवसे पूर्व इसे पूर्ण करनेका उनका विचार था। परन्तु कुछ ही श्लोकोंका इस पद्धतिसे पद्यानुवाद करनेके बाद उनकी भाव-समाधि लग गयी और शामतक वे उसी स्थितिमें रह

गये। बाह्य चेतना होनेपर नित्य कृत्य करनेके बाद उनसे पुनः प्रार्थना की गयी तो समय बहुत कम रह गया था; इसलिये एक-एक श्लोकका एक-एक छन्द न बनाकर पूरी रासपञ्चाध्यायीका संक्षिप्त पद्यानुवाद उत्सव प्रारम्भ होनेके पूर्व ही सम्पन्न कर दिया और उस उत्सवमें यह पूरा पद बहुत ही उत्साह-प्रेमसे गाया गया। अन्य पद भी बहुत ही भावपूर्ण चित्र हैं। एक चित्रण और देखिये—

पावन यमुना-पुलिन प्रकट हो, छेड़ी मोहिनि मुरली-तान।
किया श्यामने प्रेममूर्ति व्रज-सुन्दरियोंका प्रिय आह्वान॥
भूल गयीं अग-जगको, भूलीं देह-गेहका सारा भान।
जो जैसे थी, वैसे ही चल पड़ी, छोड़ लज्जा-भय-मान॥
होता उदय मधुर रस नव-नव रूपोंमें जब कृष्णानन्द।
रुक पाता न पलक प्रेमीका तब रस-लोलुप मन स्वच्छन्द॥
नहीं खींच पाता फिर उसको भुक्ति-मुक्तिका कोई राग।
प्रेम-सुधा-रस-मत्त दौड़ पड़ता, वह सहज सभी कुछ त्याग॥
प्रियतमके प्रिय मधुर-नाम-गुण लीला-कथा सुधा-रस मग्न।
सर्व-समर्पित होता उसका, होता सहज मोह-भ्रम भग्न॥
राधामुख्या भावमयी सब व्रजसुन्दरियाँ कर अभिसार।
पहुँची तुरत श्याम-चरणोंमें उन्मादिनि हो मधुर उदार॥
किया समर्पण परम मुदित मन, सहज अखिल जीवन आचार।
बनी सर्वथा एकमात्र वे प्रियतम सुख-मूरति साकार॥
सहज अमित सौन्दर्य, परम माधुर्य, अतुल ऐश्वर्यनिधान।
पूर्णकाम निष्काम सहज जो आत्माराम स्वयं भगवान॥
गोपीके उस त्यागशुद्ध रस मधुर दिव्यका करने पान।
लालायित हो उठे परम आतुर हो रसदाता रसखान॥
प्रेमीजन-मन-रञ्जन प्रभुने किया उन्हें सादर स्वीकार।
आत्माराममयी रस-क्रीडा विविध विचित्र रची सुखसार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २६६)

----×----

(९)
पद-रत्नाकरमें होली-लीला

जितने भी कवियोंने श्रीकृष्ण-लीलापर काव्य-रचना की है उन सभीने उनकी होली-लीलाका चित्रण प्रायः अवश्य किया है। होली तो वैसे ही हुड़दंगका त्यौहार है फिर व्रजमें तो आज भी होलीपर सहस्रों भक्त एकत्रित होकर होली-लीलाका आनन्द लेते हैं। श्रीपोद्दारजीने पद-रत्नाकरमें होली-लीलापर चार पदोंकी रचना की है। एकमें तो होली-लीलाके सर्वथा अप्राकृतिक रसका मार्मिक रूप व्यक्त हुआ है—

नित्य मधुर ब्रज-धाम, खेल रहे हरि-सँग होरी।
विषय बिराग-राग-रँग लिन्हों, प्रेमसुधा-रस घोरी।
एक लक्ष्य करि मोहन-आनन भरि पिचकारी छोरी॥
बदन सब अरुन भयो री॥
दंभ-दर्प-मद-मोह-कोह सब राख भए जरि होरी।
काम विसुद्ध भयो, हरि-मुख पै राजि रह्यौ बनि रोरी॥
मिटी जग की सब खोरी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २८८)

होली लीलाका चित्रण करते हुए भी श्रीपोद्दारजी दंभ-दर्पके दहनकी और कामके विशुद्ध होनेकी बात कहते हैं। अन्य तीन पदोंमें भी होली-लीलाका पूर्ण मर्यादित वर्णन है—

खेलत स्यामा-स्याम ललित ब्रजमें रस होरी॥
राधा-संग सखी-सहचरि सब मिलि केसर-रँग-घोरी।
सुन्दर स्याम-बदन पर डारत भरि-भरि कनक-कटोरी॥
प्रेम-रस-रंग-बिभोरी ॥ खेलत०॥
हेरि-हेरि हरि-मुख पिचकारी छाँड़ि रहीं चहुँ ओरी।
पकरि हाथ सखियन मलि दीन्हीं मुँह गुलाल अरु रोरी॥
स्याम-मुख अरुन भयौ री॥ खेलत०॥
देखि प्रसन्न सखियन सँग रंगिनि नवल किसोरी।

उमग्यौ हिय आनंद-सिंधु, हरि रँग दीन्हीं सब गोरी॥
सुरस-संग्राम मच्यौ री॥ खेलत०॥
बाजत ताल-मृदंग, ढोल-ढप, सिंगा-बेनु ढपोरी।
गावत राग धमार नृत्य करि, कर अबीर की झोरी॥
पुकारत हो-हो होरी॥ खेलत०॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २९०)

इसके विपरीत व्रज-रसके अन्य कवियोंने जो होली-लीलाका अपने काव्यमें चित्रण किया है वह श्रीपोद्दारजीसे सर्वथा भिन्न है। उनमें शृंगार-रसका खुला वर्णन है। श्रीपोद्दारजीकी होली-लीलाके पद सर्वथा मर्यादाबद्ध हैं; जिन्हें किसी भी समाजमें, परिवारमें बैठकर कोई भी नि:संकोच गा सकता है। अन्य रसिक संतोंके पदोंमें ऐसी बात नहीं है। जैसे—

होरी सहज साँवरी गोरी सोहैं जोरी परम उदार होरी।
परिरम्भन, चुम्बन, आलिंगन यही सहज आहार होरी॥
होरी लाडलडी के लाडलडौ पिय रहत सदा आधीन होरी।
प्यारे प्रीतिको और न आवै दिन दिन नेह नवीन होरी॥
होरी प्यारीके अनुराग रंग्यौ पिय पिय प्यारी अनुराग होरी।
प्रान एक द्वै देह श्रीहरिप्रिया हितू जननके भाग होरी॥

× × × ×

वृन्दावन खेल मच्यो भारी।
वृन्दावनकी गोरी नारी, टूटे हार फटी सारी॥
व्रजकी होरी, व्रजकी गोरी, व्रजकी श्रीराधाप्यारी।
पुरुषोत्तम प्रभुकी छबि निरखत, तन मन धन सरबस वारी॥

विस्तारभयसे यहाँ अन्य होलीके पद नहीं दिये जा रहे हैं। थोड़ेसे उदाहरणसे भी श्रीपोद्दारजी और अन्य कवियोंके वर्णनमें जो महान् अन्तर है वह दृष्टिगत हो जाता है।

----×----

(१०)
पद-रत्नाकरमें प्रेम वैचित्त्य लीला

उज्ज्वल नीलमणिमें श्रीरूपगोस्वामीपादने प्रेमवैचित्त्यकी परिभाषा बताते हुए लिखा है—

प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावतः।
या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्य मुच्यते॥

'प्रियतमके पास रहनेपर भी प्रेमके उत्कर्षके कारण उनके न रहनेकी-विरहकी स्फूर्ति होती है और उससे भाँति-भाँतिके विरह-विकारोंका विकास होता है तो उसे प्रेम वैचित्त्य कहते हैं।'

एकान्तमें व्यवधान शून्य श्रीकृष्णके मिलनकी स्थितिमें श्रीराधाजीको विरहकी अनुभूति होने लगती है। इस प्रेम वैचित्त्यकी लीलाओंका पद-रत्नाकरमें विशद वर्णन है। श्रीपोद्दारजीने इन लीलाओंका इतना सुमधुर चित्रण किया है कि भावुक साधक इनको पढ़नेपर ऐसा अनुभव करता है कि मानो ये लीलायें उसके सामने प्रत्यक्ष हो रही है। पढ़नेपर ऐसा विश्वास होता है कि श्रीपोद्दारजीने ये लीलायें स्वयं देखकर लिखी हैं अन्यथा इतना सजीव चित्रण कैसे होता? एक ऐसी ही लीला प्रस्तुत है—

याद पड़ रहा है आये थे, भोजन करने मोहन श्याम।
परस रही थी मैं उनको अति रुचिकर भोज्य-पदार्थ तमाम॥
यह मेरा भ्रम था, माधव तो खेल रहे कालिन्दी-कूल।
आये क्यों न अभी? क्या क्रीड़ामें वे गये सभी कुछ भूल॥
भूखे होंगे, कैसे उन्हें बुलाऊँ अब मैं यहाँ तुरंत?।
हृदय विदीर्ण हो रहा, कैसे हो इस मेरे दुखका अन्त॥
बना-बनाया भोजन क्या यह नहिं आयेगा प्रियके काम?।
क्या वे इसे धन्य करनेको नहीं पधारेंगे सुखधाम॥
माधव सुन हँस रहे प्रियाका यह मधु प्रेम-विलाप-विलास।
बोले—'राधे! चेत करो, देखो, मैं रहा तुम्हारे पास॥

छोड़ दिया क्यों तुमने वस्तु परसना, होकर व्यर्थ उदास?।
भूखा मैं यदि रह जाऊँगा, होगी तुम्हें भयानक त्रास'॥
यों कह, मृदु हँस, माधवने पकड़ा राधाका कोमल हाथ।
चौंकी, बोली—'हाय! हो गयी मुझसे बड़ी भूल यह नाथ!॥
कैसी मैं अधमा हूँ, जो मैं भ्रमसे गयी जिमाना भूल।
व्यर्थ मान बैठी, प्रिय! तुम हो खेल रहे कालिन्दी-कूल'॥
लगी प्रेमसे पुनः परसने विविध स्वादयुत वस्तु ललाम।
भोग लगाने लगे, मधुर-लीला पर हँसकर प्रियतम श्याम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २९२)

श्रीराधाजीके प्रेम वैचित्त्यपर श्रीपोद्दारजीकी दृष्टि खूब जमी हुई है। श्रीपोद्दारजीका स्वयंका भाव-साम्य था इसलिये भाव-विह्वल दशामें ऐसे पद रचित हुए हैं। एक और लीला देखिये—

अति एकान्त, बिकल बैठी थी आतुर मन कालिन्दी-कूल।
श्याम-विरह दुस्सह पीड़ासे व्यथित गयी थी सब कुछ भूल॥
'आवेंगे अब नहीं कभी, वे छोड़ गये मुझको मतिमान।
जान गये मुझको सब विधिसे हीन, मलीन, दोषकी खान॥
नहीं बाह्य सौन्दर्य तनिक भी, नहीं हृदय सुन्दरता-लेश।
अमित दोष-पूरित बाह्यान्तर, कलुषित कठिन कुबुद्धि विशेष॥
इसी हेतु, वे गये, किया प्रियतमने समुचित निस्संदेह।
नहीं कदापि योग्य है उनके कुत्सित अति कुरूप यह देह॥

× × × ×

बोले प्रियतम—'भूल गयी तुम, आये थे हम दोनों साथ।
दोनों ही बैठे यमुना-तट लिये परस्पर कोमल हाथ॥
हुआ प्रेम-वैचित्त्य तुम्हें तब, जागा मन वियोगका ज्ञान।
हुआ विमुग्ध देख मैं अनुपम दिव्य प्रेमकी दशा महान॥
कूदा मैं भी साथ तुम्हारे, लिया अङ्कमें भुजा पसार।
मैंने तुमको प्रिये! उसी क्षण, मिला दिव्य आनन्द अपार॥
रहा देखता निर्निमेष मैं प्यारी-मुख-सरोजकी ओर।

उमड़ा प्रेम-सुधा-रस-सागर, रहा कहीं भी ओर न छोर॥
हटा भाव वह पाकर मुझको, हुआ तुम्हें तब बाह्यज्ञान।
महिमामयी! नहीं तुमको है किंचित् निज महिमाका भान॥'

(पद-रत्नाकर, पद सं० २९६)

हिन्दी साहित्यमें खड़ी बोलीमें ऐसा सरस-काव्य मुझे तो खोजनेपर भी कहीं नहीं मिला। निश्चित ही हिन्दी काव्य जगत्‌को श्रीपोद्दारजीकी यह अतुलनीय देन है।

----×----

(११)
पद-रत्नाकरमें विरह-वर्णन

श्रीपोद्दारजीने प्रेम सरिताके दो तट माने हैं—विरह एवं मिलन। इन दोनों तटोंके बीच ही प्रेम प्रस्फुटित, विकसित होता है। विरह और मिलन दोनों ही प्रेमकी रसवृद्धिमें हेतु होते हैं। श्रीकृष्ण और श्रीराधाका कभी विछोह न होनेपर भी वियोग लीला होती है। यह भी कहा जाता है कि बिना वियोगके प्रेमका चरम विकास सम्भव नहीं।

पद-रत्नाकरमें श्रीपोद्दारजीने श्रीराधा और गोपियोंके विरहका बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। श्रीपोद्दारजीने विरह-तटके रसास्वादनके चार प्रकार माने हैं—पूर्वराग, मान, प्रेम वैचित्त्य और प्रवास। प्रेम वैचित्त्यमें होनेवाली विरह-लीलाका वर्णन अलग किया जा चुका है। पूर्वरागके समय होनेवाली विरह-वेदनाके समय एक गोपीके मुखसे श्रीपोद्दारजी कहलाते हैं—

कहौं का मन-नयननि की बात।
देखन-हित नित नँद-नंदन कौं छन-छन अति अकुलात॥
बिनु देखें तिन जो पल बीतत, कलप समान लखात।
बिरहानल नित बरत हिए महँ, छार करत सब गात॥
आवत रही मायके सौं हौं एक दिनाँ परभात।
गैयन के सँग देखे मैंने मंद-मंद मुसुकात॥
वा दिन तैं मोहि लग्यौ रोग यह, मच्यौ घोर उतपात।
अष्टजाम हौं रहौं अनमनी, घर-बाहर न सुहात॥
रैन-दिवस प्रतिपल देखन कौं नयन रहैं ललचात।
हौं कुलबधू रहौं सँग कैसें तिन के सब दिन-रात॥
मैं मनाय हारी मन-नयननि समुझाए बहु भाँति।
ये हठि परे, न मानैं, बीतत काल सदा बिललात॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४३९)

मान-लीलाके समय श्रीराधाकी विरह-व्यथासे पीड़ित अवस्थाका वर्णन

करते हुए श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

विरह-व्यथा-पीड़ित, विषाद-मुख बैठी निज एकान्त निकुञ्ज।
प्रियतम-स्मृति-रत, विरत जगत सब, विस्मृत सकल विषय-सुख-पुञ्ज॥
श्याम-वियोग-अनल जलते सब अङ्ग, अनलसे उपजा जल।
बही अश्रुधारा अजस्त्र अति उष्ण, जलाती सारा स्थल॥
उदय हुआ उच्चाट घोर उर, निकली मुखसे करुण पुकार—
'हा प्राणेश! प्राणवल्लभ, हे प्राण-प्राण, हा प्राणाधार'॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३६९)

श्रीकृष्णके मथुरा प्रवासके समय श्रीराधा एवं गोपियोंकी विरह-वेदनाके अनेकानेक वर्णन पद-रत्नाकरमें भरे हुए हैं। एक गोपी कहती है—

स्याम-घन कब बरसैगौ आय?
कब अमिलन-संताप मिटैगौ, बिरह-निदाघ नसाय?
कब मम मन-मयूर नाचैगौ, उर आनँद न समाय?
कब चित चातक चहकि उठैगौ, स्याम स्वाति-जल पाय?
स्याम-मिलन बिनु कछु नहिं भावै, कछु नहिं मोहि सुहाय।
स्याम-मिलन-रस ही साँचौ रस जीवन में सरसाय॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०२)

एक दूसरी गोपी अपनी विरह-व्यथामें एक-एक पलको युगके समान अनुभव करती है। उसके हृदयमें जो अग्नि धधक रही है उसे कोई दूसरा कैसे अनुभव कर सकता है। वह विरहाग्नि तो केवल स्याम-सुधा-जलसे ही बुझ सकती है।

स्याम बिनु छिनहूँ नाहिं सरै।
पल-पल जुग समान बीतत, नहिं अधम प्रान निसरै॥
बोलनि-चलनि, आवनि-धावनि की सुधि मोद भरै।
नव निकुंजकी मिलनि मनोहर कबहूँ नहिं बिसरै॥
का कौं कहि कैसे समुझावौं, हिय बिच अगिनि जरै।
बिनु अनुभव कैसैं पतियावै, कैसैं समुझि परै॥
कहिबे में कछु सार न दीखत, उलटौ नाम धरै।

को जग ऐसौ है, जासौं यह जिय की जरिन जरै॥
जौ कहुँ स्याम सुधा-जल आकर मो पर बरसि परै।
तब ही बुझै अनल यह जड़ सौं, निर्झर अमृत झरै॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०१)

प्रवासके समय श्रीराधाकी दशा और भी विचित्र है। उनकी विरहाग्नि और भी प्रबल है। उसकी हमलोग कल्पना भी नहीं कर सकते। वे कहती हैं—

माधव! करौ बचन निज याद।
आज-काल्हि करि काल बितावत, जनम जात बरबाद॥
मग जोहत दृग दृष्टि गई, नख कुचरत भुवि दिन जात।
दिन-दिन मास-बरस सब बीतत, निसि रोवत बिललात॥
आवैं अब, अब ही आवैंगे, यहि आसा दिन बीतै।
आवन-मिलन भए दुर्लभ दिन बीतत रीतैं-रीतैं॥
जीवन भयौ मरन, चेतन हू भयौ अचेतन प्यारे!
तन-धन-भूषन-बसन भार ह्वै लगत अगिनि—सम सारे॥
मृदु-मधु बचन सुनाइ, तबै तुम उपजायौ बिसवास।
अब बिस्वास-घात करि, मोकूँ क्यौं करि रहे निरास॥
बिरह-अगिनि अति प्रबल बरि रही, पल-पल जुग-सम जात।
अब तौ बेगि मिलौ, जीवनधन! करि साँची निज बात॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०८)

और,

स्याम! अब मत तरसाओ जी।
मन-मोहन 'नंद-लाल' दया कर दरस दिखाओजी॥
व्याकुल आज आपकी राधा माधव आओजी।
तब दरसन लगि तृषित दृगन कौ सुधा पिआओजी॥
तुम बिन प्रान रहैं अब नाहों धाय बचाओजी।
प्रानाधार! प्रान चह निकसन, बेगि सिधाओजी॥
राधा कहत, गए राधा के, पुनि पछिताओजी।
राधा बिना स्याम नहिं 'राधा-कृष्ण' कुहाओजी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०७)

श्रीकृष्णके मथुरा जानेपर व्रज-देवियोंके विरहका वस्तुतः शब्दों द्वारा क्या चित्रण हो? वहाँ न भूख है, न नींद है। यहाँतक कि हृदयमें जो अग्नि प्रज्वलित हो रही है उसका भी भान करनेवाला कोई नहीं है—

दिन नहिं चैन, रैन नहिं निद्रा, भूख-प्यासका भान नहीं।
हियमें जलती आग अमित, पर उसका भी कुछ ज्ञान नहीं॥
रोती आँखें नित्य, बरसता रहता नित्य नेहका मेह।
याद नहीं, फरियाद नहीं कुछ, तेज उज्ज्वलित जर्जर देह॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३१५)

----×----

(१२)
पद-रत्नाकरमें श्रीपोद्दारजीकी दार्शनिक मान्यतायें

परम प्राप्तव्य परमात्म-तत्त्व सर्वथा अनिवर्चनीय है। इसी तत्त्वको अति प्राचीनकालसे हमारे ऋषि-महर्षियोंने, आचार्योंने, मनीषियोंने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे देखा है। उनके दृष्टिकोणको ही 'दर्शन' की संज्ञा दी गयी है। पद-रत्नाकरमें श्रीपोद्दारजीने अपने दृष्टिकोणका स्पष्ट वर्णन किया है। जैसे चैतन्य महाप्रभुने अपने जीवनकालमें किसी मतका प्रवर्तन नहीं किया वैसे ही श्रीपोद्दारजीने किसी मतका प्रवर्तन नहीं किया। पर पद-रत्नाकर एवं उनके ग्रन्थोंमें उनके सिद्धान्तोंका स्पष्ट संकेत परिव्याप्त है। उनकी मान्यता थी कि अपनेको और भगवान्‌को यथार्थ रूपमें जाननेपर ही प्रेम होता है परन्तु यथार्थ रूपसे जानना भी प्रेमके बिना सम्भव नहीं। इस ज्ञान और प्रेममें परस्पर साध्य-साधन सम्बन्ध है। यथार्थ ज्ञानके अनन्तर जो परम प्रेम होता है वही सर्वोच्च प्रेम है। इसीको उन्होंने **रसाद्वैत** संज्ञा दी है। प्रेमकी प्रगाढ़ अवस्थामें प्रेमी, प्रेमास्पदमें भिन्नताकी अप्रतीति रहती है। इसका संकेत पद-रत्नाकरमें है—

डूब्यौ प्रेम-पयोधि में, भयौ प्रेम कौ रूप।
रसाद्वैत याकौं कहत, रहत न भिन्न स्वरूप॥
प्रेम हरी, हरि प्रेम है, प्रेमी, प्रियतम आप।
जहाँ प्रेम कौ बास, तहँ रहै न जग कौ ताप॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६४)

यहाँ प्रेमी (जीव) और प्रियतम (भगवान्) की तात्त्विक एकता नहीं, अपितु यह तो लीला-रसास्वादनके लिये अनिर्वचनीय अभिन्नता है जो सर्वथा अनुभवकी वस्तु है। जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन नहीं हो सकता वैसे ही श्रीपोद्दारजीने पद-रत्नाकरमें कई स्थानोंपर लिखा है कि प्रेमका वर्णन भी नहीं हो सकता।

प्रेम हृदयकी बस्तु है, परम गुह्य अनमोल।

कथनी में आवै नहीं, सकै न कोऊ तोल॥
रसमय, आनँदमय, बिमल, दुरलभ यह उन्माद।
अकथनीय, पै अति मधुर, गूँगेकौ-सौ स्वाद॥
जग में चार प्रसिद्ध हैं सेब्य परम पुरुषार्थ।
पंचम हरि कौ प्रेम है, परम मधुर परमार्थ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६४)

साधन-जगत्‌में श्रीपोद्दारजीने उत्तरोत्तर विलक्षण चार राज्य माने हैं— कर्मराज्य, भावराज्य, ज्ञानराज्य और महान् परम भावराज्य। इसका भी वर्णन पद-रत्नाकरमें है—

'कर्म-राज्य' से उच्च स्तरपर सुन्दर 'भाव-राज्य' जगमग।
'तत्वज्ञान' उच्चतर उससे, कष्टसाध्य अति 'राज्य' सुभग॥
परम-'भाव' का है उससे भी परे 'राज्य' अतिशय उज्ज्वल।
होती जहाँ 'प्रिया-प्रियतमकी लीला' मधुर, अचिन्त्य, अमल॥
जिसकी पद-नख-आभा अक्षर ब्रह्म, ब्रह्मका जो आधार।
उसी परात्परकी लीलाका संतत होता जहाँ विहार॥
सदा उछलता रहता वह लीलाका शान्त मधुर सागर।
विविध भाव-लहरें मनहर बन, स्वयं खेलते नट-नागर॥
छिपे ज्ञान-विज्ञान देखते जहाँ मधुर लीला-रस-भङ्ग।
होते परम प्रफुल्लित पाकर अपने दुर्लभ फलका सङ्ग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६२)

व्रजभावकी उपासनामें भी बहुत भक्त कवियोंने श्रीकृष्णको आराध्य मानकर श्रीराधाको आराधिका माना है तो कुछ भक्त कवियोंने श्रीराधाको आराध्या मानकर श्रीकृष्णको आराधक रूपमें प्रस्तुत किया है। यथा—

चाँपत चरण मोहन लाल।
पर्यंक पौढ़ी कुंवरि राधा नागरी नवबाल॥

× × × ×

चाँपत लालन पाँय प्रियाके।
कोमल कल कञ्जन हू ते अति छुवत हरें हरें करजमियाके॥

परन्तु श्रीपोद्दारजी दोनोंको ही दोनोंके आराध्य, आराधक मानते हैं—

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥
आस्त्रय-आलंबन दोउ, विषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥
लीला-आस्वादन-निरत, महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥
सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥
श्रीराधा-माधव-चरन बंदौ बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरें, नित-रस-पाराबार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १)

----×----

(१३)

पद-रत्नाकरमें भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन

पद-रत्नाकर प्रधानतया श्रीराधा-माधवकी प्रेमाभक्तिका ही ग्रन्थ है पर श्रीपोद्दारजीकी सभी भगवत्स्वरूपोंमें भेदहीन दृष्टि होनेसे उन्होंने अपने काव्यमें भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंका गुण-गान, वन्दन प्रचुर मात्रामें किया है। इस दृष्टिसे वे व्रजके अन्य भक्त-कवियोंसे पृथक हैं। यद्यपि श्रीतुलसीदासजीने श्रीकृष्ण-गीतावली लिखी है एवं श्रीसूरदासजीने श्रीराम-भक्तिके बहुतसे पद लिखें हैं पर श्रीपोद्दारजीके काव्यका इस दृष्टिकोणसे अनुशीलन करनेपर एक विशिष्टता परिलक्षित होती है।

श्रीपोद्दारजीने जैसे श्रीराधा-कृष्णके स्वरूपका वर्णन करनेके लिये अनेक पदोंकी रचना की है वैसे ही श्रीराम, श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीलक्ष्मी, श्रीदुर्गा, श्रीगणेश, श्रीसूर्य आदि स्वरूपोंका वर्णन भी विस्तारसे किया है। उन पदोंके आधारपर साधक जिस स्वरूपका ध्यान करना चाहे उसे सहायता मिलेगी।

भगवान् श्रीरामका ध्यान

उसपर समासीन जन-मनके मोहन राघवेन्द्र भगवान।
श्रीविग्रहका रंग हरित-द्युति-श्यामल दूर्वापत्र समान॥
उज्ज्वल आभासे आलोकित दिव्य सच्चिदानन्द-शरीर।

× × × ×

लसित अष्टमीके शशाङ्ककी सुषमा तेजपुञ्ज शुभ भाल।
काली घुँघराली अलकावलिकी सुन्दरता विशद विशाल॥
दिव्य मुकुटके मणि-रत्नोंकी रश्मि कर रही द्युति-विस्तार।
मकराकार कुण्डलोंका सौन्दर्य वर्णनातीत अपार॥
सुन्दर अरुण ओष्ठ विद्रुम-सम, दन्तपंक्ति शशि-किरण-समान।
अति शोभित जिह्वा ललाम अति जवापुष्प सम रंग सुभान॥
कम्बु-कंठ, जिसमें ऋक् आदिक वेद-शास्त्र करते नित वास।
श्रीविग्रहकी शोभा वर्धित करते ये सब अङ्ग-विलास॥
केहरि-कंधर-पुष्ट समुन्नत कंधे प्रभुके शोभाधाम।

भुज विशाल, जिनपर अति शोभित कङ्कण-केयूरादि ललाम॥
हीरा-जटित मुद्रिकाकी शोभा देदीप्यमान सब काल।
घुटनोंतक लंबे अति सुन्दर राघवेन्द्रके बाहु विशाल॥
(पद-रत्नाकर, पद सं० ८२४)

भगवान् श्रीविष्णुका मनोहर ध्यान

वज्र-ध्वजा-अङ्कुश-सरसिजके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त।
उभरे हुए अरुण शोभामय नख-शशि-किरणोंसे संयुक्त॥
चिन्तन-कर्त्ताओंके हृदयोंका जो हरते तम अज्ञान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे नित करिये ध्यान॥
विधि-जननी श्रीलक्ष्मीजी जिनको अपनी गोदीपर धार।
जलज-लोचना, देव-वन्दिता करती जिन्हें हृदयसे प्यार॥
कान्तिमान निज कर-कमलोंसे लालित करती अति सुख मान।
अज भव-भय-हर हरिके दोनों घुटने पिंडलीं शोभा-खान॥
जङ्घा बलनिधि, नीलवर्ण अलसीके कुसुम-सदृश सुन्दर।
परम सुशोभित होती हैं जो ज्ञान-धाम खगपति ऊपर॥
रुचिर नितम्ब-बिम्ब युग पावन पीताम्बरसे परिवेष्टित।
स्वर्णमयी काञ्चीकी लड़ियोंसे जो रहते आलिङ्गित॥
भुवन कोश-गृह उदर-देशमें नाभि-कूप सौन्दर्य-निधान।
ब्रह्माके आधार विश्वमय वारिजका उत्पत्तिस्थान॥
मरकत-मणि-समान दोनों स्तन वक्षःस्थलपर चमक रहे।
शुभ्र हारकी किरणावलिसे गौरवर्ण हो दमक रहे॥
पुरुषोत्तम हरिका मुनि-जन-मोहन विशाल अति उर उन्नत।
नयन-हृदयको सुखदायक लक्ष्मीका जहाँ निवास सतत॥
अखिल लोक-वन्दित श्रीहरिका कम्बुकण्ठ शोभा आगार।
परम सुशोभित करता कौस्तुभ-मणिको भी अपनेमें धार॥
राजहंस-सम शङ्ख सुशोभित कर-पङ्कजमें दिव्य ललाम।
शत्रुवीर-रुधिराक्त गदा हरिकी प्रिय कौमोदकी सुनाम॥
वनमाला शोभित सुकण्ठमें मधुप कर रहे मधु गुञ्जार।
जीवोंके मलरहित तत्त्वसम कौस्तुभमणि अति शोभा-सार॥
भक्तानुग्रहरूपी श्रीविग्रहका मुख-सरोज मनहर।

सुघड़-नासिका, कानोंमें मकराकृत कुण्डल अति सुन्दर॥
स्वच्छ कपोलोंपर कुण्डल-किरणोंका पड़ता शुभ्र प्रकाश।
इससे मुख-सरोजकी सुन्दरताका होता और विकास॥
कुञ्चित केश-राशिसे मण्डित मुख सब दिक् मधुमय करता।
निज छविद्वारा मधुकर-सेवित कमल-कोशकी छवि हरता॥
नयन-कमल चञ्चल विशाल हरते उन मीनद्वयका मान।
कमल-कोशपर सदा उछलते बनते जो शोभाकी खान॥
उन्नत भ्रकुटि सुशोभित हरिके मुख-सरोजपर मन-हरणी।
नेत्रोंकी चितवन अति मोहिनी सर्वसुखोंकी निर्झरणी॥
बढ़ती रहती सदा प्राप्तकर प्रेम प्रसाद-भरी मुसकान।
विपुल कृपाकी वर्षा करती हरती त्रय तापोंके प्रान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८५८)

भगवान् श्रीशिवका मनोहर ध्यान

श्रीमहेशकी अङ्गकान्ति अति सुन्दर चम्पक-वर्ण-समान।
श्रीमुख एक, त्रिलोचन शोभित, मुखपर खेल रही मुसकान॥
रत्न-स्वर्ण-आभूषण-भूषित शोभित गले मालती हार।
मुकुट मनोहर सद्रत्नोंका करता उज्ज्वलता विस्तार॥
कम्बुकण्ठमें वक्षःस्थलपर रहे आभरण विविध विराज।
जो अपनी उज्ज्वल आभासे बढ़ा रहे आनन्द-समाज॥
घुटनोंतक लंबी अति सुन्दर शोभन शिवकी भुजा विशाल।
सुन्दर वलय मनोहर अङ्गद आदिकसे शोभित सब काल॥
अग्नितप्त, अतिशुद्ध, सूक्ष्म अति, अनुपम, अति विचित्र मनहर।
वस्त्र और उपवस्त्र सुशोभित शुचि, अमूल्य श्रीशिव-तनपर॥
चन्दन-अगरु चारु कुङ्कुम-कस्तूरी-भूषित अङ्ग सकल।
दर्पणरत्न सुमण्डित करमें, आँखें कजरारी उज्ज्वल॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८८४)

भगवान्के बालरूपका ध्यान—

नील-स्याम अद्भुत तेजोमय बालक कमल-नयन भुज चार।
चक्र-गदा दक्षिण-कर शोभित, बाम शङ्ख-पङ्कजकी धार॥
कौस्तुभमणि, श्रीवत्स वक्षपर उरमें रत्न, कुसुमके हार।

अति सुन्दर पीताम्बर कटिमें, करधनि मणिमय शोभा-सार॥
मणिवैदूर्य-महार्घ-विनिर्मित मुकुट शीश घुँघराले केश।
चमक रहे अति सूर्य-रश्मिसे पाकर कुण्डल-कान्ति विशेष॥
भुज अङ्गद राजत, कर कङ्कण, रत्नाभरण सुशोभित वेश।
परम मनोहर रूप-माधुरी सुन्दरताकी सीमा-शेष॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८६२)

विस्तारभयसे यहाँ सभी स्वरूपोंके वर्णन नहीं दिये जा रहे हैं उनके लिये तो पद-रत्नाकरका पारायण ही श्रेयस्कर होगा। केवल स्वरूप-चिन्तन ही नहीं पद-रत्नाकरमें शिवाष्टक, शिव-चालीसा, शिवसहस्रनाम, श्रीदेवीसहस्रनाम और भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंकी सुमधुर आरतियोंका अनुपम संग्रह है। इनमें शिवसहस्रनाम तो वर्णानुक्रमसे है जिससे उसकी मधुरता बढ़ गयी है। एक संग्रहमें विभिन्न रुचिके उपासकोंके लिये इतनी विशद सामग्री शायद ही अन्यत्र कहीं उपलब्ध हो।

----×----

(१४)

पद-रत्नाकरमें श्रीभगवन्नाम-महिमा

श्रीपोद्दारजी नामजपको सर्वोपरि एवं सबसे सुगम साधन मानते थे। उनके लेखों और पत्रोंमें तो नाम महिमा बहुत विस्तारसे उपलब्ध है। पद-रत्नाकरमें भी २४ पद नाम-महिमाके हैं। सबसे पहले तो वे नामकी वन्दना करते हैं—

वन्दन नित्य हृदयसे 'भगवन्नाम' मोह-नाशक सुख-धाम।
परमहंस-ऋषि-मुनि-तापसजन सिद्ध-योगियोंका विश्राम॥
भक्तोंके—प्रेमीजन-मनके जीवनका शुचि परमाधार।
पाप-ताप-नाशक जन-जनका परम पुण्यमय शान्ताकार॥
सभी साधनोंका परमाश्रय सर्व-सिद्धिदायक शुभ-मूल।
स्पर्शमात्रसे जल जाते सब अघ जैसे पावकसे तूल॥
पिता-पितामह-माता-धाता, भर्ता, त्राता, गुरु, आचार्य।
जो जैसे भजता, उसका बन वैसे ही करता सब कार्य॥
करता सिद्ध सहज ही सत्वर जनके धर्म, काम, शुचि अर्थ।
देता मोक्ष, सिद्ध करता फिर प्रेम दिव्य पञ्चम पुरुषार्थ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ९९८)

नाम पाप-ताप नाशक तो है ही साथ ही सब प्रकारके साधनोंका आश्रय भी है। इतना ही नहीं नाम चारों पुरुषार्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको तो सहज ही सिद्ध करता है, पञ्चम पुरुषार्थ—भगवत्प्रेम भी देता है। इतना ही नहीं नाम मधुर वस्तुओंमें भी सबसे मधुर है—

मधुरन महँ सब तें मधुर, सुभ महँ अति सुभ धाम।
पावन महँ पावन परम, केवल हरि को नाम॥
ब्रह्म तें तृणतक सकल जग माया को काम।
सत्य सत्य पुनि सत्य जग, केवल हरि को नाम॥
मात-पिता, गुरु-बन्धु सो, सब बिधि प्रानाराम।
जो सिखवै सुमिरन सदा, केवल हरि को नाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०००)

किसीको सुख भी चाहिये तो वे लिखते हैं—

चाहता जो परम सुख तू, जाप कर हरिनामका।
परम पावन, परम सुन्दर, परम मङ्गलधामका॥
लिया जिसने है कभी हरि-नाम भय-भ्रम-भूलसे।
तर गया वह भी तुरत, बन्धन कटे जड़-मूलसे॥
हैं सभी पातक पुराने घास सूखेके समान।
भस्म करनेको उन्हें हरिनाम है पावक महान॥
सूर्य उगते ही अँधेरा नाश होता है यथा।
सभी अघ हैं नष्ट होते नामकी स्मृतिसे तथा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०१७)

और दूसरोंके लिये तो क्या वे अपने लिये भी लिखते हैं—

मेरे एक राम-नाम आधार।
ढूँढ थक्यो पर मिल्यो न दूजो, भीर परेको यार॥
देखे-सुने अनेक महीपति, पंडित, साहूकार।
जद्यपि नीति-धरम-धन-संयुत, नहिं अस परम उदार॥
मात-पिता, भ्राता, नारी, सुत, सेवक बंधु अपार।
बिपद-काल महँ कोउ न संगी, स्वारथमय संसार॥
करि करुना दयालु गुरु दीन्हों, राम-नाम सुख-सार।
दुस्तर भव-सागर महँ अटक्यो बेरो उतर्‌यो पार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०२०)

----×----

(१५)

पद-रत्नाकरमें जीवनकी समस्याओंका समाधान

आज हम प्राय: सभी जीवनकी विविध समस्याओंसे संत्रस्त हो रहे हैं। कुछ अपवाद स्वरूप व्यक्तियोंको छोड़कर हम सभीका जीवन विभिन्न कारणोंसे तनावपूर्ण है। चेष्टा करनेपर भी हम अशान्तिसे त्राण नहीं पाते हैं।
ऐसी स्थितिमें भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार विरचित ग्रन्थ 'पद-रत्नाकर' हमारा सम्बल बन सकता है। यद्यपि पद-रत्नाकर 'सूर सागर' की तरह भक्तिरसका गीति काव्य है पर उसमें हमारे जीवनकी विभिन्न समस्याओंके सटीक समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। सुविधाके लिये उनमेंसे कुछ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कई बार हमारे सामने ऐसी परिस्थितियाँ न चाहनेपर भी आ जाती हैं जब हम उनका सामना करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर भयभीत होकर उनसे भागना चाहते हैं। ऐसी परिस्थितिके लिये उनका समाधान है—

मानव-जीवनमें कटुता-कठिनाई विविध भाँति आतीं।
कभी-कभी वे अति भीषण बन तन-मन पर हैं छा जातीं॥
जो निराश हो रोने लगता, उसपर वे बढ़तीं भारी।
विविध प्रकारोंसे बहुसंख्यक बन, अति दुख देतीं सारी॥
हो भयभीत, छोड़कर साहस, जो कापुरुष भाग जाता।
भाग न पाता, गिर पड़ता वह, बुरी तरह कुचल जाता॥
पर जो कर विश्वास ईश्वरी बलपर, सम्मुख डट जाता।
उससे डर वे भाग छूटतीं, नहीं दुखी वह हो पाता॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२८७)

मेरे कई बन्धुओंने जीवनमें इसे अपनाकर सुख-शान्तिका अनुभव किया है। केवल एक उदाहरण दे रहा हूँ। अलीगढ़ विश्व-विद्यालयके हिन्दीके तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा० प्रेमस्वरूप गुप्त एक स्थानपर लिखते हैं—'एक अनुभवकी बात कहता हूँ। अभी मेरे विभागमें कुछ उत्पाती तत्त्व उभर उठे हैं। उन्होंने कुछ ऐसी स्थितियाँ खड़ी करनी चाही थी जो शिक्षा जगत्‌के लिये अच्छी नहीं कही जा सकती। मैं उन स्थितियोंसे समझौता नहीं कर पा रहा था। मनको लगा क्यों इस

पद-मोहमें पड़ा जाय। मैंने अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे दिया। अधिकारी और मित्रोंका आग्रह हो रहा था कि मैं त्यागपत्र न दूँ। पर मेरा मन तैयार नहीं हो पा रहा था। मन सोचता था, क्यों संघर्ष मोल लूँ। इधर श्रीपोद्दारजीका 'पद-रत्नाकर' मैं उलट-पलट रहा था। १२८७ वाँ पद पढ़ रहा था। सच मानिये, इस पदने मेरी मनःस्थिति ही बदल दी। ईश्वर विश्वास और आत्म-विश्वासकी नयी ज्योति-सी फूटी; और मैंने पाया कि बहुत जल्दी ही वे उत्पाती स्थितियाँ धराशायी हो गयीं। अगर मैं इस मार्गका अवलम्बन न करता तो सम्भव है, भाग न पाता, गिर पड़ता और बुरी तरह कुचला जाता। अतएव श्रीपोद्दारजीका यह पद-संग्रह कोरा मध्ययुगीन और भक्तिभाव बोधक ही नहीं है, आधुनिक जीवन-बोधके संदर्भमें उसका नवीनतम संस्करण भी है। मुझे विश्वास है, यदि निष्ठासे श्रीपोद्दारजीकी वाणियोंका लोग अनुशीलन करेंगे तो उन्हें आस्थापूर्ण जीवन-दर्शन और मार्गदर्शन मिलेगा।'

यह है एक विद्वान्‌का अनुभूत सुझाव।

बहुत बार न चाहनेपर भी हम क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं। यद्यपि क्रोध आता तभी है जब हमारे मनकी चाही बात नहीं होती पर उस समय हम अपना विवेक खो बैठते हैं, भले ही हमें बादमें पछताना पड़े। ऐसे समयके लिये श्रीपोद्दारजीने सुझाव दिया है—

क्रोध जब आये, चुप हो रहो। क्रोध आते ही माला गहो।
क्रोधमें राम-नाम-जप करो। क्रोधको सह करके तप करो॥
क्रोधको मत करने दो काम। क्रोधके समय रटो हरि नाम।
क्रोधको खूब दिखाओ त्रास। क्रोधका करो क्षमासे नाश॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४७८)

इसी तरह काम-वासनासे जन-साधारणकी तो बात ही क्या, अच्छे साधक भी इससे पिण्ड नहीं छुड़ा पाते। यह एक ऐसा प्रबल वेग है जिससे ऊपर उठना अत्यन्त कठिन है। इसके लिये श्रीपोद्दारजी कहते हैं—

'काम' सृष्टिका मूल, काम है सहज जीवका निज संस्कार।
अतः मिटा देना उसका अस्तित्व असम्भव-सा व्यापार॥
कभी 'काम-रिपु' का केवल बल-संयमसे होता न विनाश।
'प्रेम'-रूप आते ही पर वह होता नष्ट, बिना आयास॥
'काम-नाश' का इसीलिये है साधन एक नित्य अव्यर्थ।
'त्याग-विशुद्ध प्रेम' में परिणत कर दे उसे, समझकर अर्थ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६८५)

लोभ केवल धनका ही नहीं होता। हमारे संग्रहकी प्रत्येक प्रवृत्तिमें लोभ छाया रहता है। इसी लोभकी वृत्तिके कारण हम लोग प्राय: अशान्त रहते हैं। इससे छुटकारा पानेके लिये उनका कहना है—

धन, जन, पद, अधिकार, कीर्ति-यश, भूमि, भवन, संतति, सम्मान।
सभी आदि-अन्तवाले हैं, क्षणभंगुर, दु:खोंकी खान॥
मोह-विवश—'इनमें सुख है', यह छायी मानव-मनमें भ्रान्ति।
इससे खोज रहा सुख इनमें, बढ़ते दुख नित नयी अशान्ति॥
एकमात्र प्रभुके स्वरूपगत हैं अतिशय सुख नित्य अनन्त।
सुख इच्छित यदि हो तो, मन अनन्य से भजिये श्रीभगवन्त॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३९२)

घरमें आजकल पति-पत्नीकी समस्या बेहद टेढ़ी होती जा रही है। न चाहनेपर भी प्राय: जीवनमें ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं जिनसे दोनोंके जीवनमें तनाव रहने लगता है। इतना ही नहीं जिन परिवारोंमें तलाकका नाम घृणासे लेते थे; उन्हींमें तलाक होने लगे हैं। इस परिस्थितिमें हम यदि श्रीपोद्दारजीके निम्न विचारोंको अपना सकें तो इस अनाचारसे बच सकते हैं—

नारी है घरकी साम्राज्ञी, पुरुष बाहरी कार्याधीश।
सेवक-सखा परस्पर दोनों, दोनों ही दोनोंके ईश॥
है घर एक, तथापि सदा है कर्मक्षेत्र दोनोंके भिन्न।
हो यदि कर्म विभिन्न न, तो बस, हो जायेगा घर उच्छिन्न॥
खूब निखरता यों दोनोंके मिलनेसे गृहस्थका रूप।
प्रीति परस्पर बढ़ती, बढ़ता पल-पल सुख-कामना अनूप॥
दोनों दोनोंको सुख देते, रहते स्व-सुख-सौभाग्य-हीन।
स्वार्थ न होनेसे दोनोंका चित्त न होता कभी मलीन॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३२९)

इसी तरह आजकल पुत्र-पितामें पर्याप्त मतभेद देखनेमें आते हैं। पुत्र जैसे ही बड़ा होता है वह पिताकी आज्ञामें रहनेमें कठिनाईका अनुभव करता है। वह अपने स्वतन्त्र विचारोंको अधिक महत्व देता है। फलत: दोनोंमें मन-मुटाव बढ़ने लगता है। ऐसी स्थितिमें उनका सुझाव है—

पुत्र सुपुत्र वही जो करता नित्य पिता-माताका मान।

तन-मन-धनसे सेवा करता, सहज सदा करता सुख-दान॥
धर्मशील, तपनिष्ठ, मनस्वी, मितव्ययी, दाता, धृतिमान।
पुत्र वही होता कुल-तारक, फैलाता कुल-कीर्ति महान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३२६)

आज मित्र-मित्रमें भी परस्पर आत्मीयताका अभाव होकर दिखावापन अधिक आ रहा है। इसी कारणसे एक दूसरेको सुख पहुँचानेकी भावनामें कमी आ गयी है। मित्रके लिये पद-रत्नाकरमें लिखा है—

सब बिधि सौं सेवा करै, करै सकल सुख-दान।
आपु बँरै दुख मित्र को, करै न कछु अभिमान॥
दुराचार, दुर्मति, दुरित, हरै सहज दे ज्ञान।
सेवै निज आत्मा-सरिस, मित्र सो परम सुजान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३८६)

उदासीको हम अपने जीवनसे प्रायः निकाल नहीं पाते। किसी-न-किसी कारणसे जीवन-यात्रामें उदासीके प्रसंग आते ही रहते हैं। श्रीपोद्दारजी उदासीसे दूर रहनेके लिये कहते हैं—

जगकी छोड़े आस, प्रभुमें कर विश्वास।
ले वह सुखकी साँस, कभी न रहे उदास॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३१०)

हम यदि अपने जीवनमें इन बातोंको उतार सकें तो निश्चय ही सुखी हो सकते हैं।

पर-दोष दर्शन और परचर्चा भी प्रायः हम सभीके जीवनका एक अंग बन गया है। यहाँ तक कहा जाता है कि पर-दोष-दर्शन एवं पर-चर्चामें बड़ा रस आता है। इस दोषको जीवनसे कैसे निकाला जाय, इसके लिये श्रीपोद्दारजीने लिखा है—

करो न पर-दोषोंका चिन्तन-कथन कभी भी, किसी प्रकार।
करो न कुछ तन-मन-वाणीसे कभी किसीका भी अपकार॥
देखो थोड़े-से गुणको भी, उसे बढ़ाओ, कर सत्कार।
प्रोत्साहन दो निज-परकी शुभ वृत्ति मात्रको सभी प्रकार॥
मङ्गल ही सोचो नित मनमें, करो सभी मङ्गल-आचार।
सोचो-करो वही, जिसमें हो दैवी सम्पदका विस्तार॥
कभी किसीका जी न दुखाओ, दो न किसीको भी दुत्कार।

सबमें सदा विराजित ईश्वर, देखो उसे, करो सत्कार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४५३)

आज हमारे देशमें प्रगति और विकासके नामपर कितना पतन हो रहा है और उससे हमारा जीवन कितना क्लेशमय और तनावपूर्ण होता जा रहा है तथा किस उपायसे हम इससे बच सकते हैं इसका विवेचन भी 'पद-रत्नाकर' में कई स्थानोंपर हुआ है—

नभमें शब्द भर रहे सारे—'प्रगति', 'विकास' और 'उत्थान'।
'नव-जागरण', 'नवोल्लास', बनती 'नव-नव योजना' महान॥
पर हो रहा इन्हीं नामोंपर 'पीछे हटना' पतन, 'विनाश'।
'नव-जागरण', 'योजना' सारी, है 'प्रवञ्चना' 'नव-उल्लास'॥
'सदाचार' का स्थान ले चुका 'अनाचार', 'अति भ्रष्टाचार'।
'त्याग' और 'कर्तव्य' छिप गये, आये 'अर्थ' और 'अधिकार'॥
'सत्य' और 'अस्तेय' उठ गये, बढ़ी 'झूठ', 'चोरी' सर्वत्र।
पैसेपर बिक रहा सहज ईमान, धर्म खो अत्र-परत्र॥
पैसा ही बन गया सभी कुछ—कर्म-धर्म-साधन-भगवान।
सत्पथ-न्याय छोड़, सब मानव भजते उसे, त्याग ईमान॥
बिकने लगी दया, सेवा सब, देश-भक्ति, ईश्वरकी भक्ति।
नीच स्वार्थ-साधनके पथ सब बने, बढ़ रही विषयासक्ति॥
नकली दवा, दूध-घी नकली, नकली सब खाद्यादि पदार्थ।
बनने-बिकने लगे अनर्गल, भूले सभी स्वार्थ-परमार्थ॥
खान-पानकी मिटी शुद्धता, बढ़ा अशुचि आमिष-आहार।
मांस-मत्स्य-अंडोंके नव-नव होने लगे बृहद् व्यापार॥
खुलने लगे कसाईखाने बड़े-बड़े वैज्ञानिक आज।
माइ-बाप सरकार कर रही घोर जीव-हिंसा, तज लाज॥

× × × ×

मिटने लगी सती-मर्यादा, पातिव्रत्य, त्याग-बलिदान।
तितली बनी बालिका-तरुणी इधर-उधर उड़ रही अमान॥
कुल-कन्या, कुल-वधू छोड़कर कुल-लज्जा, मर्यादा-मान।
जन-समूहमें लगी नाचने, अङ्ग दिखाने, करने गान॥
काम-क्रोध-लोभ—तीनों हैं आत्म-विनाशक नरक-द्वार।

आज हमारे सब कामोंमें है इनका प्रभाव-विस्तार॥
परम लक्ष्य मानव-जीवनका एकमात्र जो है भगवान।
भूल उसे, सब हुए दुःखमय भोगोंमें रत जड-विद्वान॥
पाप दीखता पुण्य, दीखता अनाचार ही अब आचार।
तमसे ढकी बुद्धि करती उलटा निर्णय, विपरीत विचार॥
इसीलिये हम पतन-गर्तमें गिरे जा रहे, कर अभिमान।
पता नहीं—अब कहाँ रुकेंगे, कब सुबुद्धि देंगे भगवान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४९८)

आज शासनकर्ताओंकी सेवा, त्यागकी भावनाके अभावमें जनता इतना कष्ट सहन कर रही है। उसके समाधानके लिये श्रीपोद्दारजी शासकका कर्तव्य बताते हुए लिखते हैं—

निज सुखकी परवाह न करके, करना सुखी प्रजाको नित्य।
फैलाना आचरण स्वयं कर, सदाचार सेवा, तप, सत्य॥
ईश्वरमें रति बढ़े सतत, करना-करवाना ऐसे कर्म।
न्याय-दयायुत सदा बरतना—यही श्रेष्ठ राजाका धर्म॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३२१)

इतना ही नहीं आज जो राष्ट्रोंमें परस्पर वैर-विरोध बढ़ता जा रहा है और इससे जन-जीवन कितना कष्टमय होता जा रहा है—इसपर भी श्रीपोद्दारजीने 'पद-रत्नाकर' में गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है—

राष्ट्रोंमें हो प्रेम परस्पर, रहे न रञ्चक वैर-विरोध।
सभी एक दूसरेका हित चाहें, करें परस्पर हितकर बोध॥

× × × ×

जीवमात्रमें देखें प्रभुको, करें सभीका हित सत्कार।
विनय-विनम्र स्वकर्मोंद्वारा पूजें सब प्रभुको अविकार॥
भारतके अध्यात्म तेजका, प्रभो! पुनः हो पूर्ण विकास।
तप्त विश्वमें फैला दे वह परम सुशीतल सुखद प्रकाश॥
करें स्वकर्म सभी तन-मनसे प्रभु पूजा-हित अभिनय-रूप।
ममता-राग-रहित हो बरतें प्रभुकी आज्ञाके अनुरूप॥
मङ्गलमय, हे परम दयामय, सर्वातीत, सर्वमय राम!

पूर्ण करो भारत-मानवकी यह विनीत प्रार्थना ललाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३७४)

यहाँ विस्तारभयसे अधिक न लिखकर इतना ही संकेत किया जा रहा है कि 'पद-रत्नाकर' में सभी व्यक्तिगत समस्याओंसे लेकर राष्ट्रोंकी समस्याओंके भी सत्यनिष्ठ, नैतिक और समीचीन समाधान श्रीपोद्दारजीने प्रस्तुत किये हैं, जो मानव जीवनकी नैसर्गिक आवश्यकता है। इनका अनुशीलन करके हम अपनी समस्याओंके चिरस्थायी समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

----×----

(१६)
पद-रत्नाकरमें भक्ति-योग

यद्यपि श्रीपोद्दारजीको साधनाकी अनेक प्रणालियोंका अनुभूत ज्ञान था परंतु उनका हृदय भक्तिसे ओत-प्रोत था। प्रेम-भक्तिका ही एक उत्कर्ष रूप माना गया है। इसीलिये श्रीपोद्दारजीकी रचनाओंमें अन्य रसोंकी अपेक्षा भक्ति-रस अधिक व्यापक है और भक्तिके सभी अंगों, साधनों और रसोंका पूर्ण विवेचन हुआ है। भक्तिमें पाँच रस मुख्य माने गये हैं। शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं मधुर। इन पाँचों ही रसोंका सम्पूर्ण विवेचन पद-रत्नाकरमें हुआ है। यथा—

शान्तरस—

हे नाथ! तुम्हीं सबके मालिक, तुम ही सबके रखवारे हो।
तुम ही सब जगमें व्याप रहे विभु! रूप अनेकों धारे हो॥
तुम ही नभ-जल-थल-अग्नि तुम्हीं, तुम सूरज-चाँद-सितारे हो।
यह सभी चराचर है तुममें, तुम ही सबके ध्रुवतारे हो॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४६)

दास्यरस—

दास्यरतिमें तो श्रीपोद्दारजी भगवान्‌को अपना दास बनानेकी प्रार्थना न करके अपने दासका दास बनानेके लिये कहते हैं—

प्रभो! कृपाकर मुझे बना लो अपने नित्य-दासका दास।
सेवामें संलग्न रहूँ उल्लसित नित्य, मन हो न उदास॥
चिन्तन हो न कभी भोगोंका, नहीं विषयमें हो आसक्ति।
बढ़ती रहे सदा मेरे मन पावन प्रभु-चरणोंकी भक्ति॥
कभी न निन्दा करूँ किसीकी, कभी नहीं देखूँ पर-दोष।
बोलूँ वाणी सुधामयी नित, कभी न आये मनमें रोष॥
कभी नहीं जागे प्रभुता-मद, कभी न हो तिलभर अभिमान।
समझूँ निजको नीच तृणादपि, रहूँ विनम्र, नित्य निर्मान॥
कभी न दूँ मैं दुःख किसीको, कभी न भूल करूँ अपमान।
कभी न पर-हित-हानि करूँ मैं, करूँ सदा सुख-हितका दान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८७)

वात्सल्य रस—

नेहभरे नयनन्हि सों निरखत लै कर कनक-कटोरी।
दूध पिवावति मातु जसोदा हिय महँ हरख हिलोरी॥
सखा ग्वाल-बालक खेलन को मुदित स्याम ढिग आये।
पय पीयत निहारि नँद-नंदन सब इत-उत छिप छाये॥
पाइ सुभग संकेत सखनि कौ धावन चहत कन्हैया।
'खेलन जाहु लाल! पय पीकर'—जननी जात बलैया॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २०९)

सख्य रस—

सखनि सँग खेलत दोऊ भैया।
रुचिर खेल बहु भाँति, मुदित मन दाऊ, कुँवर कन्हैया॥
धावत मिलि गैयन के पाछें, बोलत 'हैया-हैया'।
ईस्वरपनौ बिसारि, अग्य-से नाचत 'ताता-थैया'॥
कोमल किसलय लेई बनाई एक नैक-सी नैया।
लाइ तराय दई जमुना में हँसि-हँसि जात बलैया॥
डूबन लगी तरी जल में तब, 'हा मैया, री मैया'।
लगे पुकारन—'नारायन! अब तुम ही बनौ खेवैया'॥
लरत कबौं, रूठत, रिझवत, पुचकारत दै गलबैयाँ।
धन्य-भाग्य ये हरि के प्यारे नैक-नैक-से छैयाँ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २१७)

मधुर रस—

मधुर रसका तो 'पद-रत्नाकर' समुद्र ही है। इसमें मधुर-रसके सभी अंगोंका पूर्ण रूपसे प्रतिपादन हुआ है। प्रारम्भमें ही श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

माधव! मुझको भी तुम अपनी सखी बना लो, रख लो संग।
खूब रिझाऊँगी मैं तुमको, रचकर नये-नये नित ढंग॥
नाचूँगी, गाऊँगी, मैं फिर खूब मचाऊँगी हुड़दंग।
खूब हँसाऊँगी हँस-हँस मैं, दिखा-दिखा नित नूतन रंग॥
धातु-चित्र पुष्पों-पत्रोंसे खूब सजाऊँगी सब अङ्ग—
मधुर तुम्हारे, देख-देख रह जायेंगी ये सारी दंग॥

सेवा सदा करूँगी मनकी, भर मनमें उत्साह—उमंग।
आनँदके मधु झटकेसे सब होंगी कष्ट-कल्पना भङ्ग॥
तुम्हें पिलाऊँगी मीठा रस, स्वयं रहूँगी सदा असङ्ग।
तुमसे किसी वस्तु लेनेका, आयेगा न कदापि प्रसङ्ग॥
प्यार तुम्हारा भरे हृदयमें, उठती रहे अनन्त तरंग।
इसके सिवा माँगकर कुछ भी, कभी करूँगी तुम्हें न तंग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०)

मधुर भावमें मनमें क्या-क्या मधुर तरंगे उठती रहती हैं—इसके अनेकानेक मधुर चित्र हैं। एक चित्र देखिये—

प्यारे आकर हँसकर तुरत खड़े होंगे वे मेरे पास।
देख उन्हें मैं सँकुचित होकर मुँह ढक लूँगी, कर मृदु हास॥
रस-सागर नटनागर वे यह देख धरेंगे बसनाञ्चल।
उछलेगा तब हृदय, बहेगा नेत्रोंसे शुचि प्रेम-सलिल॥
कर कर पकड़ सुनायेंगे वे मृदु वाणी होकर गद्गद।
अवश बनूँगी मैं प्रेमातुर, बह जायेगा सारा मद॥
प्रेम-आर्त वे देख प्राण-प्रिय मुझे मनायेंगे मन खोल।
खोलेंगे रहस्य सब मधुमय शुचि बचनोंमें मिश्री घोल॥
देख सुअवसर प्यारे मेरी पूरेंगे सब मनकी आस।
मुझे सदाके लिये स्नेह दे, रख लेंगे अपने ही पास॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४५३)

प्रेमको श्रीपोद्दारजी पंचम पुरुषार्थ मानते हुए लिखते हैं—

जगमें चार प्रसिद्ध हैं सेब्य परम पुरुषार्थ।
पंचम हरि कौ प्रेम है, परम मधुर परमार्थ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६४/९)

विभिन्न आचार्योंने भक्तिके कई प्रकारके भेद किये हैं। अष्टादश पुराणोंमें श्रीमद्भागवत भक्ति प्रधान पुराण माना गया है। श्रीमद्भागवतमें भी भक्तिके कई भेद बताये गये हैं पर सप्तम स्कन्धमें प्रह्लादजीने भक्तिके ये ९ भेद बताये हैं, जिन्हें नवधाभक्ति कहते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

इस नवधा भक्तिका पूर्ण प्रतिपादन पद-रत्नाकरमें हुआ है। कुछ उदाहरण

प्रस्तुत हैं—

१- श्रवण—

(१) कानोंसे सब शब्द त्यागकर, सुनूँ सर्वदा राधेश्याम। (पद सं० १०५३)

(२) काननि सुनौं स्यामकी मुरली (पद सं० १०५५)

(३) सुना करूँ नित मुरली की धुन, वचन तुम्हारे परम ललाम। (पद सं० १०५६)

२- कीर्तन—

(१) मौन ग्रहण कर रटूँ निरन्तर, जिह्वासे श्रीराधेश्याम। (पद सं० १०५३)

(२) गाया करूँ तुम्हारा नाम। (पद सं० १०५६)

(३) बानी नित्य करै गुन-गान। (पद सं० १०५५)

३- स्मरण—

(१) मनसे सभी प्रपञ्च दूरकर रहूँ निरखता राधेश्याम। (पद सं० १०५३)

(२) मनमें बस्यौ रहै नित मेरे आठौं जाम मधुर रस-खान।

(३) राधेश्याम-नाम-गुणमें ही लगा रहे मन सदा अनन्य।

४- पाद-सेवन—

(१) पद-किंकरि किंकरि—किंकरि करौ मोय स्वीकार। (पद सं० १६)

(२) पद-सेवनको बढ़ै चाव नित काल अनन्त अपार। (पद सं० १६)

५- अर्चन—

(१) धातु चित्र-पुष्पों-पत्रोंसे खूब सजाऊँगी सब अंग। (पद सं० ३०)

(२) मैं सेवा नित तन-मन से करूँ तुम्हारी।

६-वन्दन—

(१) श्रीराधा-माधव-चरन बंदौ बारम्बार। (पद सं० १)

(२) श्रीराधा-रानी चरन बंदौ बारंबार। (पद सं० ५)

७- **दास्य—**

(१) अति उदार अब दीजिये हमको यह वरदान।
मिले मंजरी का हमें दासी-दासी-स्थान।

(पद सं० १८)

८- **सख्य—**

(१) मेरे तुम स्वामी-सखा मेरे सर्वाधार।

(२) खेलन ग्वालन संग दोउ भैया। (पद सं० २२४)

९- **आत्म निवेदन—**

यह श्रीपोद्दारजीका परम प्रिय विषय है। इसके सर्वाधिक पद उपलब्ध हैं क्योंकि श्रीपोद्दारजी गोपी-प्रेमका प्रारम्भ और पर्यवसान सर्वसमर्पणमें ही मानते हैं—

(१) सच्चा त्याग उदय हो, जीवन श्रीचरणोंमें अर्पित हो

(२) सौंप दिये मन-प्राण-तुम्हीं को सौंप दिये ममता अभिमान।
जब जैसे, जी चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान॥
मत सकुचाओ मनकी करते, सोचो नहीं दूसरी बात।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात॥
मान-अमान, दुःख-सुखसे अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध।
तुम्हीं एक कैवल्य मोक्ष हो, तुमही केवल मेरे बन्ध॥
रहूँ कहीं, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य॥
एक तुम्हारे चरणकमलमें हुआ विसर्जित सब संसार।
रहे एक स्वामी बस, तुम ही, करो सदा स्वच्छन्द विहार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४५४)

इस तरह हम देखते हैं कि पद-रत्नाकरका अनुशीलन हृदयमें भक्ति-रसको जागृत करनेवाला सफल काव्य है। आपादमस्तक भगवत्प्रेम-निमज्जित श्रीपोद्दारजीके हृदयके उद्‌गार ये पद किसी भी सहृदय पाठकको भक्ति-रसका अपार आनन्द देनेमें पूर्ण समर्थ हैं। किसी भी प्रकारके भक्ति साधकको इससे पूरा मार्गदर्शन मिल सकता है। श्रीपोद्दारजीका भक्तियोगका व्यापक अध्ययन, गम्भीर चिन्तन और गहन रसानुभूतिका ही यह परिणाम है कि उनकी रचनाएँ भक्ति मार्गमें रुचि रखनेवालोंको भगवान्‌की

भक्ति एवं प्रेमके पथपर अग्रसर होनेकी सफल प्रेरणा देती रहेंगी।

----×----

(१७)
श्रीपोद्दारजीके काव्यमें शृँगार-रस

शृँगार रसका काव्यके रसोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीकृष्णकी लीलाएँ तो इतनी मधुर हैं कि उनमें शृँगार रस आये बिना रह नहीं सकता। जिन संतोंने श्रीकृष्ण लीलाओंका साक्षात् दर्शन किया है, उन्होंने जो पद-रचना की उसमें शृँगारका खुला वर्णन मिलता है। इसमें उन संत कवियोंका कोई दोष भी प्रतीत नहीं होता। इसका कारण है कि उस समय पद न तो प्रकाशित होते थे और न उनका व्यापक प्रचार था। संत अपने अधिकारी शिष्योंको उनकी पात्रताके अनुसार पद सुनाकर उन्हें लीला-चिन्तनकी साधनामें प्रवृत्त कर देते थे। वे शिष्य उसी पद्धतिसे अपनी उपासनामें अग्रसर होते रहते। जबसे ऐसे पद प्रकाशित होने लगे और उनका व्यापक प्रचार होने लगा तब अपात्र व्यक्तियोंने इन पदोंका दुरुपयोग किया और उनके जीवनमें सामाजिक अभद्रताओंने प्रवेश पा लिया। इसमें दोष उन संत कवियोंका नहीं है। कुछ कवियोंने अपनी कल्पनाकी उड़ानसे भी शृँगार रसका खुला वर्णन किया है। उनके पास श्रीराधा-कृष्णकी पवित्र लीलाओंको देखनेकी दृष्टि नहीं थी। उनको तो अपने मनकी कुत्सित शृँगारपरक भावनाओंको व्यक्त करना था। नायक-नायिकाके माध्यमसे। अध्यात्मनिष्ठा एवं भगवद्बुद्धिके अभावमें, नायक-नायिकाके रूपमें श्रीराधा-कृष्ण भी आ गये। रसकी पूर्तिके प्रवाहमें श्रीराधा-कृष्णमें मर्त्यलोकके नायक-नायिकाको आरोपित कर उनकी दिव्य अलौकिक लीलाओंकी साधारण नाट्य-सा चित्रिण प्रारम्भ हो गया। ऐसे काव्यकी आलोचना करनेका न यहाँ स्थान है और न औचित्य ही।

अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार इतना दृढ़तासे कहा जा सकता है कि जो भी व्यक्ति श्रीराधा-कृष्णकी लीलाओंका सर्वांगीण वर्णन करेगा उसके काव्यमें शृँगार-रस आना अवश्यम्भावी है। श्रीपोद्दारजीने अपने काव्यमें श्रीराधा-कृष्णकी लीलाओंका ऐसा ही वर्णन किया है इसलिये उसमें भी कुछ शृँगार रस आया है। श्रीपोद्दारजी संत कवियोंके भी शृँगारके पदोंका प्रचार करनेके विरोधी थे। उन्होंने अपने एक स्वजनको ऐसे पदोंके संदर्भमें एक पत्रमें लिखा था—

'शृँगारके पद चाहे किसीके हों, देखने, पढ़ने, सुनने नहीं चाहिये। परीक्षित सरीखे पुरुषने भी रास-पञ्चाध्यायी सुनकर भगवान्‌में दोष-भावना कर ली; तब दूसरेकी बात ही क्या है? जो लोग इस प्रकारकी लीलाओंके पद पढ़ते-सुनते हैं, वे या तो भगवान्‌में दोष देखने लगते हैं या वासनाओंके चक्रमें पड़कर श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंको गन्दी भौतिक क्रिया समझकर गिर जाते हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ वाञ्छनीय नहीं हैं।'

इसी दृष्टिकोणके कारण पूरे पद-रत्नाकरके १५६५ पदोंका अवलोकन करनेपर दो-तीन पदोंमें कुछ शृँगार रसका वर्णन मिलता है। पर ऐसे पदोंकी भाषा भी अत्यधिक मर्यादित है। यथा—

तुम कुछ भी कहो भले, कहकर सुख पाओ।
डाँटो, दुत्कारो, पर निकुञ्जमें आओ॥
अब देखे बिना न मैं, पलभर रह पाता।
तुमसे क्या कहूँ—न कुछ भी मुझे सुहाता॥
मुरली, लकुटी, प्रिय सखा, वत्स, गो-माता।
है नहीं किसीसे मेरा मन हरषाता॥
मैयाका मिश्री-माखन मुझे न भाता।
मन अधर-सुधा-रस-पान-हेतु बिलखाता॥

× × × ×

निज पटसे पोंछे नेत्र मधुर-मृदु हँसकर।
फिर प्राणनाथसे मिली बाहुमें कसकर॥
सब मिटी व्यथा मुखपर मुसकाहट छायी।
कर अधर-सुधा-रस-पान गले लपटायी॥
सब हुए प्रफुल्लित अङ्ग, बही रस-धारा।
सुख अन्तहीनने सारे दुखको मारा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३९७)

एक और पदमें कुछ शृँगार रसका वर्णन द्रष्टव्य है—

बच रहे थे दो, नहीं जग-भान था।
लोक-सत्ताका मिटा सब ज्ञान था॥
नहीं कुछ कर्तव्य मनमें शेष था।

नहीं तिलभर जगत्-स्मृतिका लेश था॥
मिट गया सब भोगका अस्तित्व था।
कर्म न था कहीं तनिक कर्तृत्व था॥
मैं तथा मेरे हृदय-धन श्याम थे।
खेलते रहते सदा अविराम थे॥
थी नहीं मनमें कहीं कुछ वासना।
थी नहीं कुछ भी किसीकी त्रासना॥

× × × ×

चल रही दोमें सदा रँगरेलियाँ।
हो रही थीं सुखमयी रस-केलियाँ॥
था नहीं व्यवधान कोई भी कहीं।
एक ही दो बने लीलारत वहीं॥
दो मिटे, फिर, एक ही बस हो गये।
भेद सारे सब तरहके खो गये॥
मैं समायी श्याममें हो श्याम ही।
प्रिया बन मुझमें समाये श्याम भी॥
कौन जाने श्याम हैं या राधिका?
नहीं अब आराध्य हैं, आराधिका॥
सब तरह घुल-मिल हुए बस, एक हैं।
इन्द्रियाँ, मन, चित्त, मति न अनेक हैं॥
सभी अवयव अङ्ग आपसमें मिले।
एक ही प्रिय मधुरिमासे हैं खिले॥
एक थे पहले, अभी भी एक हैं।
यही दोनोंकी मधुमयी टेक है॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४०५)

श्रीपोद्दारजीके जीवन-कालमें कभी-कभी रात्रिमें उनके द्वारा रचित पदोंका गायन स्वान्तःसुखाय होता था। ऐसी गोष्ठियोंमें बहुत ही कम व्यक्ति उपस्थित रहते थे। वे स्वयं भी अवकाश रहनेपर ही रह पाते थे। पर उस समय भी ऐसे पदोंका गायन कभी नहीं होता था—यह उनकी दृढ़ता थी। दो-तीन पद और भी ऐसे मिले

हैं जो उनके जीवन-कालकी तो बात ही क्या, पद-रत्नाकरमें भी प्रकाशित नहीं हुए, वे पहली बार इस पुस्तकमें प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसा ही एक पद है—

सो रही थी मैं अकेली कक्षमें। लगा कोई रहा चिपटा वक्षमें॥
अति सुकोमल सरस उसका स्पर्श है। उठा रहा उरमें अनोखा हर्ष है॥
विविध क्रीड़ा रसमयी करने लगा। मोद देता, मोदमें भरने लगा॥
मिटा सब व्यवधान अंतर भर गया। हुआ सब विस्मृत, मधुरस भर गया॥
अंग सारे मिले उसके अंगमें। इन्द्रियाँ सब मिलीं इन्द्रिय-संगमें॥
मन अमन हो, रूप रसका बन गया। प्रेमकी निर्मल सुधामें सन गया॥
चेत आया, वृत्ति जब बाहर हुई। लगी मैं यह सोचने, विस्मित हुई॥
स्वप्न था तो स्वप्न यह टूटा न क्यों। मिलन दोनोंका अभी छूटा न क्यों॥

इन्हीं कतिपय उदाहरण स्वरूप पदोंको यहाँ देनेका इतना ही उद्देश्य है कि जैसे श्रीपोद्दारजीके काव्यमें अन्य सभी काव्य-रसोंका पूर्ण विवेचन हुआ है उसी प्रकार श्रृँगार रसका भी अत्यन्त उज्ज्वल रूपमें प्रतिपादन हुआ है।

----×----

(१८)
श्रीपोद्दारजीके काव्यमें समन्वयवादी दृष्टिकोण

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका दृष्टिकोण हमेशा ही हर क्षेत्रमें समन्वयवादी रहा है। उनका यही दृष्टिकोण उनके काव्य-संग्रह 'पद-रत्नाकर'में भी व्याप्त है। चाहे विभिन्न मतोंकी बात हो अथवा विभिन्न धर्मोंके आधारभूत सिद्धान्तोंकी, उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि सभी धर्मोंकी विभिन्न उपासना पद्धतियाँ एक ही सत्यकी उपलब्धिकी ओर अग्रसित करती हैं। विभिन्न रुचियोंके कारण नाम भिन्न-भिन्न होनेपर भी तत्त्व एक ही है। इसीका प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं—

एक सत्य जो परम तत्त्व परमात्मा ब्रह्म ईश भगवान्।
निर्गुण-गुणसह-निराकार, साकार-सगुण, सब भाँति महान्॥
नित्य, सच्चिदानन्द, सर्वमय, सर्वातीत, सर्व-आधार।
विष्णु, सूर्य, दुर्गा, शिव, गणपति, राम-कृष्ण अवतार-उदार॥
अर्हत्, बुद्ध, पिता ईसाके, अहुरमज्द, अल्लाह, प्रधान।
प्रकृति, नियम, अणु, महत्, कर्म, कर्त्ता, अव्यक्त, स्वरूप-ज्ञान॥
सभी प्राणियोंमें विभक्त-से जो प्रतीत होते 'अविभक्त'।
वही उपास्य, उपासित होते विविध रूपमें हो अभिव्यक्त॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८५५)

वास्तवमें एक सनातन धर्म ही ऐसा है जो किसी भी धर्मका विरोध न करके, सबका आदर करता है। क्या कोई इस्लाम या ईसाई मतावलम्बी महानुभाव यह बता सकते हैं कि श्रीपोद्दारजीकी तरह उनके किसी धर्माचार्यने राम, कृष्ण, ब्रह्मको अपने उपास्यके बराबर रखा है। यह तो स्वार्थी संकुचित विचारधाराके राजनीतिक नेताओंकी देन है कि उन्होंने अपने वोट-बैंक बनानेके लिये धर्म निरपेक्षताका नाम देकर उदार सनातन धर्मका विरोध शुरू कर दिया और भोली जनताको भ्रमित करके अपने स्वार्थ साधनमें लगे हुए हैं। श्रीपोद्दारजीने अपनी दूरदर्शी दृष्टिसे सच्चे सनातन धर्मका स्वरूप अपनी लेखनी, अपनी वाणी और कृतित्वसे सबके समक्ष रखा, उसका कोई सच्चा मानव-हितैषी समर्थन किये बिना

नहीं रह सकता। काश! ऐसे ही आग्रहशून्य विचार अन्य धर्मोंके आचार्य जनताके सम्मुख रखते तो हमारा विश्व कितना सुखी हो जाता। काश! आज जो शक्तियाँ एक दूसरेको कष्ट पहुँचानेमें, जबरदस्ती धर्मान्तरण करनेमें लग रही है वही शक्ति परस्पर सुख पहुँचानेमें लग जाती।

भक्तिके जितने भी आचार्य हुए हैं, प्राय: सभीने अपने मतकी पुष्टिके लिये श्रीशंकराचार्यके अद्वैतवादका खंडन किया है। परन्तु श्रीपोद्दारजीके प्रतिपादनकी शैली इन सभी आचार्योंसे सर्वथा भिन्न है। श्रीपोद्दारजीने अपनी मान्यताओंकी स्थापना करते समय किसी भी अचार्यके मतका खण्डन नहीं किया। एक बड़ा अद्‌भुत तथ्य यह है कि उन्होंने अद्वैतको स्वीकार करते हुए अपने रसाद्वैतकी प्रतिष्ठा की। अपने मतके मण्डनकी यह प्रणाली उनके महान् व्यक्तित्वकी अद्‌भुत विशिष्टता है। यह समन्वय पद्धति श्रीपोद्दारजीकी निजी विशिष्टता थी जिसका दर्शन अन्य मत परिपोषण-पद्धतिमें प्राय: नहीं मिलता। इसीके लिये वे पद-रत्नाकरमें लिखते हैं—

निर्गुण-निराकार हैं वे ही, निर्विशेष वे ही पर-तत्त्व।
वही सगुण हैं निराकार सविशेष सृष्टि-संचालक तत्त्व॥
वही सगुण-साकार दिव्य लीलामय शुद्ध-सत्त्व भगवान।
अगुण-सगुण-साकार सभी हैं एक अभिन्न रूप सुमहान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२७३)

इसी भावको और स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—

ब्रह्म सगुण-निर्गुण तथा निराकार-साकार।
परमात्मा, परमेश, विभु, विश्व, विश्व-आधार॥
प्रणव, यज्ञ, यज्ञेश, सब प्रकृति, पुरुष, पर, वेद।
भेदरहित, नित भेदमय, संयुत भेदाभेद॥
सर्वरूप, शुचि, सर्वमय, शाश्वत, सर्वातीत।
शुद्ध सत्व, पुनि त्रिगुणमय, यद्यपि त्रिगुणातीत॥
नारायण, नरसिंह, श्रीकृष्ण, राम, गोपाल।
सूर्य, शक्ति, गणनाथ, शिव, रुद्र, स्वयम्भू, काल॥
नाम-रूप-लीला विविध तत्त्व एक वेदान्त।
वाणी-मन-मतिसे परे औपनिषद सिद्धान्त॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२७५)

केवल उपास्यके स्वरूपोंमें ही नहीं श्रीपोद्दारजीने तो सभीको सभीमें अपने

उपास्यके दर्शन करने और तदनुरुप व्यवहार करनेके लिये कहा है—

ब्राह्मण-श्वपच, देवता-मानव, मानव-पशु, खग-कीट-पतङ्ग।
धनी-दरिद्र, सुशिक्षित-अपठित, नर-नारी, शुभ अङ्ग-अनङ्ग॥
वृक्ष-लता-गिरि-सरिता-सागर, अनल-अनिल-जल-भू-आकाश।
सबमें सदा पूर्ण हरि हैं, सबमें है उनका एक प्रकाश॥
नाम-रूप-व्यवहार-भिन्नता, पर तात्त्विक न तनिक भी भेद।
है सबमें सुव्याप्त वही सच्चिदानन्द परतत्त्व अभेद॥
प्रभुको सबमें, सबको प्रभुमें नित्य देखता जो विद्वान।
वह देखा करता नित प्रभुको, उसे देखते नित भगवान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२६१)

और,

जीव चराचरमें बसे एकमात्र भगवान।
उन्हें देख, नित कीजिये सबका हित-सम्मान॥
घृणा-द्वेषका त्याग कर, सबसे करिये प्रीति।
प्रभु-प्रसन्नताकी सुखद यह शुचि सुन्दर रीति॥
वर्ण-जाति-कुल-देशके, विविध मतोंके भेद।
प्रभु-लीला सब, हैं रमे सबमें राम अभेद॥
रहे भेद बर्तावमें नाम-रूप-अनुसार।
बना रहे पर नित्य सम सबमें आत्मविचार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४१४)

आज जहाँ दलितों और पिछड़े वर्गके लोगोंको लेकर इतनी राजनीति खेली जा रही है, वहाँ श्रीपोद्दारजीने ब्राह्मण और श्वपच दोनोंमें अपने प्रभुको देखकर आदर करनेको कहा है। इसी तरह उन्होंने चारों वर्णोंको समान रूपसे समाजके लिये आवश्यक और महत्त्वपूर्ण माना है—

त्यों ही एक समाजके चार अङ्ग सुख-खान।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुचि शूद्र धर्म-मतिमान॥
ज्ञानार्जन कर विप्र नित, वितरण करता ज्ञान।
क्षत्रिय रक्षा-रत सतत शूरवीर बलवान॥
वैश्य न्यायसे धन कमा, देता सबको दान।
शूद्र नित्य श्रम-दान कर, करता अति कल्याण॥

एक समाज-शरीर-हित चारों हैं वरदान।
प्रभुसे चारों ही बने, चारोंमें भगवान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३२२)

आज यदि हम सभीमें यह भाव आ जाय तो कहाँ किसीके शोषण और अहितकी भावना आ सकती है। इतना ही नहीं उन्होंने तो सभी लोग अपना जीवन सुखसे व्यतीत कर सकें इसके लिये सबको सलाह दी है—

पुत्र पितामें देखे ईश्वर, पिता पुत्रमें भी भगवान।
पत्नी पतिमें देखे ईश्वर, पति पत्नीमें भी भगवान॥
मालिक नौकरमें प्रभु देखे, नौकर मालिकमें भगवान।
प्रजा नृपतिमें देखे ईश्वर, राजा प्रजारूप भगवान॥
शूद्र विप्रमें देखे ईश्वर, विप्र शूद्रमें भी भगवान।
करें सभी हित-मान सभीका, सबमें सदा देख भगवान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४१३)

आज हम दैनिक जीवनमें जितने दुखी, चिन्ताग्रस्त हैं और अपने छोटेसे स्वार्थके लिये दूसरोंका अहित करनेमें जरा भी नहीं हिचकते इसे देखकर श्रीपोद्दारजीका कोमल हृदय अत्यन्त व्यथित था। आजकल लोग जाति, प्रान्त, भाषा, धर्म और सीमित स्वार्थको लेकर बिना परिणामको सोचे एक दूसरेका विनाश और अहित करनेमें लग जाते हैं। उनके लिये वे लिखते हैं—

'वसुधा है एक कुटुम्ब-सदृश', एकात्मरूप जग सारा था।
भारत-जनका यह अनुभव था, भारतका यह प्रिय नारा था॥
सब हों निरोग, सब सुख भोगें, सबका हित हो सबका विकास।
सबके मंगल-कल्याण-हेतु जीवनका बीते श्वास-श्वास॥
हा! आज वही हम भूल गये अपना स्वरूप, अपने विचार।
छाया है इसीलिये हमपर यह घोर तमोमय अनाचार॥
है जाति, प्रान्त, भाषा, भू-सीमा, मजहबका ले क्षुद्र नाम।
खोकर, विवेक, परिणाम भूल, कर रहा काम काले तमाम॥
भूले विद्वान सुविद्याको, नेतागण भूल गये स्वदेश।
भूले शिक्षार्थी शिक्षाको धारण करके विध्वंस-वेश॥
है स्वार्थ-रोगसे ग्रस्त, ले रहा राष्ट्रवाद अब ऊर्ध्व श्वास।
खण्डित भारतको खण्ड-खण्ड करनेका चालू है प्रयास॥

मानव-जीवनकी असफलता, मानवताका यह दुरुपयोग।
हैं नरक भोगते रहे, ले चले नरकोंके ही विपुल भोग॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४९५)

यद्यपि हम पतनके मार्गपर बहुत आगे बढ़ चुके हैं पर अभी भी अपने जीवनकी गतिको मोड़कर यदि श्रीपोद्दारजीके बताये दृष्टिकोणको अपनाकर तदनुरूप जीवन बना सकें तो सुखी हो सकते हैं। 'पद-रत्नाकर'के अनेक पद हमारे पथ-प्रदर्शक बनकर जीवनमें सरसता भर सकते हैं।

----×----

(१९)
श्रीपोद्दारजीके काव्यमें गीता

श्रीपोद्दारजीको गीताका अभ्यास बचपनसे ही था। जब इनकी उम्र लगभग ७/८ साल की थी तब ये अपनी दादी रामकौरके साथ संत श्रीबखन्नाथजीके पास जाया करते थे। उन्होंने इन्हें गीताजीके श्लोक कंठस्थ कराने शुरू कर दिये। इन्होंने एक सालके अन्दर ही पूरी गीता कंठस्थ करके सुना दी। बादमें श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे मिलनेपर गीताजीके भावोंकी गहराईमें प्रवेश हो गया। गीताजी श्रीगोयन्दकाजीके प्राणोंके समान थी और उनके संगसे इनके गीता-अध्ययनकी गहनता भी आधार बिन्दु तक पहुँची।

गीताजीके पहले अध्यायमें ४७ श्लोक हैं उनका तो इन्होंने उसी क्रमसे ४७ पदोंमें अनुवाद किया। अनुवादकी भाषा सरल होते हुए भी भाव ज्यों-के-त्यों रखे गये हैं। इस क्रमको देखनेसे प्रतीत होता है कि पूरी गीताका वे इसी रूपमें पद्यानुवाद करना चाहते थे पर वह कार्य किसी कारणसे रुक गया। इसके बाद तो प्रत्येक अध्यायके महत्त्वपूर्ण श्लोकोंका पद्यानुवाद मिलता है पर उसमें भी गीताके मूल भावोंकी रक्षा दर्शनीय है।

गीता अध्याय तीनका तीसवाँ श्लोक है—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

इसका पद्यानुवाद देखिये—

मुझमें चित्त जोड़ सब कर्मोंका कर मुझमें ही संन्यास।
युद्ध करो तुम, तजकर ममता, कामज्वर, भोगोंकी आस।

(पद-रत्नाकर, पद सं० ९६८)

गीता अध्याय ६ का ४१ वाँ श्लूलोक है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

इसका पद्यानुवाद है—

योगभ्रष्ट पुण्यलोकोंमें जाकर, रह चिर-सुख-सम्पन्न।
शुचि सन्मार्गारूढ़ धनीके घरमें फिर होता उत्पन्न॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ९७४)

इस तरह एक-एक श्लोकके एक-एक पदमें बहुतसे अनुवाद है और कुछ श्लोकोंके भावोंपर स्वतन्त्र पद रचित है। जब देश-विभाजनके समय हिन्दुओं पर

अमानवीय अत्याचार हो रहे थे तब उनके उद्बोधनके लिये उन्होंने गीताके दूसरे अध्यायके कुछ श्लोकोंका भावानुवाद अपने पदमें किया। यथा—

उठो! कायरता छोड़ो बीर।
हृदय हिला दो शत्रु-पक्षका जूझो, रण रणधीर!॥
कूद पड़ो, बस धर्मयुद्धमें, लड़ो धर्मके काज।
मर जाओगे स्वर्ग मिलेगा, जयसे भूतल-राज॥
यही समय है—शौर्य-वीर्यका पूरा करो प्रकाश।
पापी-दलको मार भगा दो, करो पापका नाश॥

(पद-रत्नाकर, पद सं ९६२)

इस तरह कुल ३६ पद गीताजीपर आधारित है जो सरल भाषामें गीताके भावोंको हृदयंगम करनेमें सहायक हैं। अन्तमें श्रीगीताजीकी आरतीकी रचना हुई जो अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है।

----×----

(२०)
पद-रत्नाकरमें श्रीगोयन्दकाजीकी गुरु तुल्य वन्दना

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको श्रीपोद्दारजी गुरु तुल्य ही मानते थे। अपने वसीयतनामेंमें उन्होंने लिखा भी है कि वैसे तो आचार्य श्रीशंकराचार्य तथा भगवान् श्रीचैतन्यदेवसे मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ, पर यदि सत्य कहा जाय तो मेरे जीवनपर बहुत बड़ा प्रभाव श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका है। काव्य-रचनामें सभी भक्त कवि गुरु-वन्दना करते ही हैं; उसी परम्परामें श्रीपोद्दारजीने भी गुरु वन्दना-महिमाके कई पद लिखे हैं। सेठजी श्रीगोयन्दकाजी अपनी महिमा, प्रशंसाके घोर विरोधी थे इसलिये उनका स्पष्ट नाम नहीं लिखा गया है पर श्रीपोद्दारजीने अपने शब्द-कौशलसे छिपे रूपमें भी संकेत कर दिया है कि ये कुछ पद उनके लिये लिखे गये हैं—

पुनि सुमिरौं गुरुबर चरन, वांछित-फल-दातार।
अति दुस्तर भव-सिंधु तें, जे पहुँचावहिं पार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५३)

परम गुरु राम मिलावनहार।
अति उदार, मञ्जुल, मङ्गलमय, अभिमत-फलदातार॥
टूटी-फूटी नाव पड़ी मम भीषण भव-नद-धार।
जयति-जयति जय देव दयानिधि! बेग उतारो पार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५५)

जयति देव, जयति देव, जय दयालु देवा।
परम गुरु, परम पूज्य, परम देव, देवा॥
सब बिधि तव चरन-सरन आइ पर्‌यौ दासा।
दीन-हीन-मति-मलीन, तदपि सरन-आसा॥
पातक अपार किंतु दया को भिखारी।
दुखित जानि राखु सरन पाप-पुंजहारी॥
अबलौंके सकल दोष छमा करहु स्वामी!

ऐसो करु, जातें पुनि हौं न कुपथगामी॥
पात्र हौं, कुपात्र हौं, भले अनधिकारी।
तदपि हौं तुम्हारो अब लेहु मोहि उबारी॥
लोग कहत तुम्हरो सब, मनहु कहत सोई।
करिय सत्य सोइ, नाथ! भव-भ्रम सब खोई॥
मोरि ओर जनि निहारि, देखिय निज तनही।
हठ करि मोहि राखिय हरि! संतत तल पनही॥
कहौं कहा बार-बार जानहु सब भेवा।
जयति, जयति, जय दयालु, जय दयालु देवा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५६)

जिसके मार्ग-दर्शनसे साधक अध्यात्म-पथपर अग्रसर होता है, संसारके भोगोंसे ऊपर उठकर उस अनिर्वचनीय तत्त्वकी उपलब्धि करता है उसके प्रति नतमस्तक होना स्वाभाविक ही है। फिर श्रीपोद्दारजीको तो प्रथम भगवान्‌के साक्षात् दर्शन श्रीगोयन्दकाजीके माध्यमसे ही हुए थे। दर्शनोंके बाद ही कृतज्ञ हृदयके उद्‌गार हैं—

सर्व-शिरोमणि विश्व-सभाके, आत्मोपम विश्वम्भरके।
विजयी नायक जग-नायकके, सच्चे सुहृद चराचरके॥
सुखद सुधा-निधि साधु कुमुदके, भास्कर भक्त-कमल-वनके।
आश्रय दीनोंके, प्रकाश पथिकोंके, अवलम्बन जनके॥
लोभी जग-हितके, त्यागी सब जगके, भोगी भूमाके।
मोही निर्मोहीके, प्यारे जीवन बोधमयी माँके॥
तत्पर परम हरण पर-दुखके, तत्परता-विहिन तनके।
चतुर खिलाड़ी जग-नाटकके, चिन्तामणि साधक-जनके॥
सफल मार्ग-दर्शक पथ-भ्रष्टोंके, आधार अभागोंके।
विमल विधायक प्रेम-भक्तिके, उच्च भावके, त्यागोंके॥
परम प्रचारक प्रभु-वाणीके, ज्ञाता गहरे भावोंके।
वक्ता, व्याख्याता, विशुद्ध, उच्छेदक सर्व कुभावोंके॥
पथ दर्शक, निष्काम-कर्मके, चालक अचल सांख्य पथके।
पालक सत्य-अहिंसा व्रतके, घालक नित अपूत पथके॥
नाशक त्रिविध तापके, पोषक तपके, तारक भक्तोंके।

हारक पापोंके संजीवन-भेषज विषयासक्तोंके॥
पावनकर्ता पतितोंके, पृथ्वीके, प्रेत-पितृ-गणके।
भूषण भूमण्डलके, दूषण राग-द्वेष रणाङ्गणके॥
रक्षक अतिदृढ़ सत्य-धर्मके, भक्षक भव-जंजालोंके।
तक्षक भोग-राग, धन-मदके, व्यापारी सत-लालोंके॥
दक्ष-दुभाषी 'जन, जन-धन'के, मुखिया राम-दलालोंके।
छिपे हुए अज्ञात लोक-निधि, मालिक असली मालोंके॥
चूड़ामणि दैवी गुण-गणके, परमादर्श महानोंके।
महिमा-वर्णनमें अशक्त तव विद्या-बल विद्वानोंके॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३३१)

श्रीपोद्दारजीने सच्चे गुरूमें आवश्यक गुणोंका वर्णन करते हुए लिखा है—

गुरु यथार्थमें वही, स्वयं हो जिसको प्रभुका तत्त्व-ज्ञान।
शम-दम-त्याग-समत्व-प्रेमकी जो हो पावन मूर्ति महान॥
निज आदर्श चरितकी द्युतिसे हरे शिष्यका तम-अज्ञान।
प्रभुकी ओर लगा, जो कर दे सहज समुज्ज्वल-जीवन-दान॥
सेवा करे सदा ऐसे सद्गुरुकी, समझ उसे भगवान।
श्रद्धा-विनय-भक्तिसे अनुगत रहे, करे पूजन-सम्मान॥
बना रहे आज्ञाकारी नित कर्म-वचन-मनसे सज्ञान।
गुरुकी सहज कृपासे उसका हो अभ्युदय, परम कल्यान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३३३)

श्रीगोयन्दकाजीमें उपरोक्त सभी गुण विद्यमान होनेसे वे जब उनसे मिले तभीसे उनकी ओर विशेष आकृष्ट थे।

----×----

(२१)
पद-रत्नाकरमें श्रीपोद्दारजीका जीवन

श्रीपोद्दारजीने अपने काव्यमें अपनी दिव्य आध्यात्मिक अनुभूतियों एवं उपलब्धियोंका स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन किया है। किंचित् गहराईमें उतरकर 'पद-रत्नाकर'का अध्ययन किया जाय तो ऐसा स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि अनेकानेक पद उनकी स्वयंकी दिव्य स्थितिके यथार्थ चित्र हैं। उनमें कई चित्र तो इतने विलक्षण हैं कि श्रीराधाके जिन भावोंका विवेचन-वर्णन उन्होंने अपने ग्रन्थ 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'में किया है, वे ही दिव्य भाव उनके स्वयं अनुभूत ही नहीं थे अपितु वे उन्हींमें विहरण करते थे। इतनी विपुल संख्यामें स्वयं अनुभूत भाव-चित्र होनेके कारण ही कई लोगोंकी ऐसी मान्यता है कि 'पद-रत्नाकर' ही श्रीपोद्दारजीकी यथार्थ जीवनी है।

श्रीपोद्दारजीकी गम्भीर साधनाका श्रीगणेश तो सन् १९१६ में शिमलापालकी नजरबन्दीके जीवनमें हुआ था। उसके बाद बम्बई जानेपर कुछ समय व्यवसाय प्रधान जीवन रहनेसे वे भाव कुछ शिथिल-से हो गये। सन् १९२० में पुनः श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सम्पर्कसे साधनाके भावोंका पुनरुद्रेक हुआ एवं जनवरी १९२२ से श्रीपोद्दारजी पुनः विशेष तत्परतासे साधन-संलग्न हो गये। इसी समयसे काव्य-रचनाका सूत्रपात हुआ। उस समयके रचित पदोंको देखनेसे लगता है कि श्रीपोद्दारजीके उस समयके जीवनमें दैन्य और शरणागतिकी प्रधानता थी—

अब हरि! एक भरोसो तेरौ।
नहिं कछु साधन ग्यान-भगति कौ, नहिं बिराग उर हेरौ॥
अघ ढोवत अघात नहिं कबहूँ, मन विषयन कौ चेरौ।
इंद्रिय सकल भोगरत संतत, बस न चलत कछु मेरौ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-सरिस अति प्रबल रिपुन तें घेरौ।
परबस पर्‍यौ, न गति निकसन की जदपि कलेस घनेरौ॥
परखे सकल बंधु, नहिं कोऊ बिपद-काल कौ नेरौ।
दीनदयाल दया करि राखउ, भव-जल बूड़त बेरौ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२८)

इसी भावके एक-दो नहीं अनेक पद हैं जिनमें अपना दैन्य और भगवान्‌के विरदको बार-बार स्मरण किया गया है—

आयौ चरन तकि सरन तिहारी।
बेगि करौ मोहि अभय, बिहारी!
जोनि अनेक फिर्‌यो भटकान्यो।
अब प्रभु पद छाड़ौं न मुरारी!॥
मो सम दीन, न दाता तुम सम।
भली मिली यह जोरि हमारी॥
मैं हौं पतित, पतित-पावन तुम।
पावन करु, निज बिरद सँभारी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १५०)

दैन्यके साथ ही उस समय श्रीगोयन्दकाजीकी प्रेरणासे श्रीपोद्दारजी निर्गुण-निराकारकी साधनामें प्रवृत्त हुए और अल्पकालमें ही अच्छी स्थिति प्राप्त कर ली। इसका संकेत उनके निम्नपदसे मिलता है—

समझा, इस 'मैं'में और तुझमें किसी तरहका भेद नहीं।
इस विशाल 'मै' की व्यापकतामें कोई विच्छेद नहीं॥
तुझसे भरे हुए इस 'मैं' में हुआ कभी भी खेद नहीं।
सदानन्द परिपूर्ण एकरस, कोई भेदाभेद नहीं॥

ऐसा लगता है कि साधनामें तत्पर होनेके बाद शीघ्र ही श्रीपोद्दारजीका मन संसारसे उपराम होने लगा था। दिसम्बर १९२६ में वे अपने मनको प्रबोध देते हुए लिखते हैं—

इधर उधर क्यों भटक रहा मन-भ्रमर, भ्रान्त उद्देश्य विहीन।
क्यों अमूल्य अवसर जीवनका व्यर्थ खो रहा तू, मतिहीन॥
क्यों कुबास-कंटकयुत विषमय विषय-बेलिपर ललचाता।
क्यों सहता आघात सतत, क्यों दुख निरन्तर है पाता॥
विश्व-वाटिकाके प्रति-पदपर भटक भले ही, हो अति दीन।
खाकर ठोकर द्वार-द्वारपर हो अपमानित, हीन-मलीन॥
सह ले कुछ संताप और यदि तुझको ध्यान नहीं होता।
हो निराश, निर्लज्ज भ्रमण कर फिर चाहे खाते गोता॥

विसमय विषय-बेलिको चाहे कमल समझकर हो रह लीन।
चाहे जहर-भरे भोगोंको सलिल समझकर बन जा मीन॥
पर न जहाँतक तुझे मिलेगा पावन प्रभु-पद-पद्म-पराग।
होगा नहीं जहाँतक उसमें अनुपम तव अनन्य अनुराग॥
कर न चुकेगा तू जबतक अपनेको, बस, उसके आधीन।
होगा नहीं जहाँतक तू स्वर्गीय सरस सरसिज-आसीन॥
नहीं मिटेगा ताप वहाँतक, नहीं दूर होगी यह भ्रांति।
नहीं मिलेगी शांति सुखप्रद, नहीं मिटेगी भीषण श्रांति॥
इससे हो सत्वर, सुन्दर हरि-चरण-सरोरुहमें तल्लीन।
कर मकरंद मधुर आस्वादन, पापरहित हो पावन पीन॥
भय-भ्रम-भेद त्यागकर, सुखमय सतत सुधारस कर तू पान।
शान्त-अमर हो, शरणद चरण-युगलका कर नित गुण-गण-गान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०४८)

ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पूर्व-जन्मोंकी साधनाके सारे संस्कार जागृत हो गये और जो किंचित्-मात्र अवशेष था उसे पूर्ण करनेके लिये भगवान् उनको तीव्रतासे अपनी ओर आकर्षित करने लगे। जब स्वयं भगवान् खींचना चाहें तो विलम्ब कहाँ? उनका मन तीव्र वैराग्यसे भर गया और वे संसारके प्रपञ्चको छोड़नेके लिये आकुल हो गये। यद्यपि 'कल्याण'का शुभारम्भ होनेसे एक नई जिम्मेवारी अध्यात्मके नामपर आ गयी थी पर फिर भी बहुत विचार करके उन्होंने सारे बन्धनोंको छोड़कर सन्यास ग्रहणका निर्णय ले लिया और उसके लिये कमण्डलु भी मँगवा लिया। श्रीसेठजीसे भी गंगातटपर किसी एकान्त स्थलमें रहनेकी अनुमति सन् १९२७ में प्राप्त कर ली। अब उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन यह शुभ घड़ी सामने आ जाय। उनके हृदयकी यही आकुलता जून १९२७ में मुखरित हो उठी—

होगा कब वह सुदिन समयशुभ, मायावी मन बनकर दीन।
मोहमुक्त हो, हो जायेगा पावन प्रभु-चरणोंमें लीन॥
पुण्यभूमि ऋषि-सेवितमें कब होगा इसका निर्जन-वास।
गङ्गाकी पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नास॥
कब साधनके प्रखर तेजसे सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषय-विमुख हो हरिकी विमल भक्तिको पायेगा॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४१)

इस समय वे अध्यात्म-पथपर इतनी तेजीसे अग्रसर हो रहे थे कि अगस्त १९२७ में वे गुनगुनाने लगे—

एक लालसा मन महँ धारौं।
बंसी-बट कालिंदी-तट नट-नागर नित्य निहारौं॥
मुरली-तान मनोहर सुनि-सुनि तन-सुधि सकल बिसारौं।
पल-पल निरखि झलक अँग-अंगनि पुलकित तन-मन वारौं॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०५२)

इस स्थितिमें बम्बई छूट गयी, 'कल्याण'का काम संभालनेके लिये गोरखपुर आ गये। गोरखपुर आते ही मन भगवान्‌के दर्शनोंके लिये छटपटाने लगा। अब न और कुछ सुहाता था न अन्य कोई इच्छा थी। मन हर समय व्याकुल रहता; जिसका हम कोई अनुमान नहीं लगा सकते। हृदयकी सच्ची उत्कण्ठा काव्यमयी भाषामें मुखरित हो गयी—

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तुँ ही मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो हिवड़ो उछल्यौ आवै है॥
तड़फ रह्यौ ज्यूँ मछली जल बिन, अब तूँ क्यूँ तरसावै है।
दरस दिखाणैमैं देरी कर क्यूँ अब और सतावै है?॥
पण, जो इसी बातमैं तेरौ चित राजी होतो होवै।
तौ कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणौ दुख होवै॥
तेरै सुखसैं सुखिया हूँ मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातिर प्रियतम! अपणै सुखमैं मत काँटा बोवै॥
पण या निश्चै समझ, तनें मिलणैकी खातर मेरा प्राण।
छिण-छिणमें व्याकुल होवै है, दरसणकी है भारी टाण॥
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानै नहीं किसीकी काण।
आठों पहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलककी समझै हाण॥
पण प्यारा! तेरी राजीमैं है नित राजी मेरौ मन।
प्राणधिक, दोनूँ लोकाँकौ तूँ ही मेरौ जीवन-धन॥
नहीं मिलै तौ तेरी मरजी, पण तन-मन तैरै अरपन।
लोक-वेदहै तूँही मेरौ, तूँ ही मेरौ परम रतन॥
चातककी ज्यूँ सदा उड़ीकूँ कदे नहीं मुहनैं मोडूँ।

दुख देवै, मारै, तड़पावै तो भी नेह नहीं तोडूँ॥
तरसा-तरसाकर जी लेवै तो भी तनैं नहीं छोडूँ।
झाकूँ नहीं दूसरी कानी तेरैमैं ही जी जोडूँ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४१८)

जैसे जलके बिना मछली तड़पने लगती है वैसे ही भगवान्‌के न मिलनेसे मन तड़प रहा है, प्राण व्याकुल हो रहे हैं। इस स्थितिका तो सच्चा चित्र इस पदमें है ही पर इसका अनुभव तो उन्हीं भाग्यवानोंको है जिन्हें ऐसी स्थिति कभी प्राप्त हुई है। इसके साथ ही यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात है—इस व्याकुलतामें भी तत्सुख-सुखिया-भाव। प्रेमका जो बहुत ऊँचा भाव 'तत्सुख सुखित्वम्' नारदजीने बताया है उसका यहाँ स्पष्ट दर्शन होता है। भगवान्‌के अभी दर्शन हुए नहीं है, उसके लिये तरस रहे हैं पर फिर भी 'तेरे सुखसैं सुखिया हूँ मैं' और 'मेरी खातिर प्रियतम! अपणै सुखमैं मत काँटा बोवै।' दर्शनोंकी उत्कट इच्छासे मेरे प्राण क्षण-क्षणमें व्याकुल हो रहे हैं पर प्यारे! फिर भी तुम्हारी प्रसन्नतामें ही मेरी प्रसन्नता है। तुम तरसा-तरसाकर प्राण ले लो तो भी मैं दूसरी तरफ नहीं देखूँगा। इन प्रेमके भावोंका निदर्शन है साक्षात् दर्शनोंके पूर्व सन् १९२७ में। इससे लगता है कि पूर्वजन्ममें इन्होंने 'तत्सुख सुखित्वम्' की साधना की थी।

ऐसे विशुद्ध, सुदृढ़ भाव होनेपर भगवान् दूर थोड़े ही हैं। वे तो ऐसे भावोंकी ही प्रतीक्षा करते हैं जिससे दर्शनका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सके। इस पद रचनाके ठीक पाँच ही दिनों बाद जसीडीहमें १६ सितम्बर १९२७ को श्रीपोद्दारजीको भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन हुए। प्रथम साक्षात्कारका वह दर्शनोल्लास उसी समय एक पदके रूपमें प्रकट हो गया—

जन्म-जन्मसे लगी हुई थी जिनके दर्शनकी आशा।
रूप-सुधा वारिधि-अवगाहनकी, जिसके थी अभिलाषा॥
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें।
विरहानल था धधक उठा जिससे उसके सारे तनमें॥

× × × ×

यह साधन-विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा-पारावार॥
उनके प्रेम-रज्जुसे हरिको बँधना पड़ा स्वयं तत्काल।
रखनी पड़ी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल॥

कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना।
चरण-स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना॥
उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथोंसे आकाश अपार॥
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप-छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं बता सकती हैं, वर्णनमें अक्षम॥
वाणी कुछ प्रयास करती है, नेत्रोंका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर॥
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता॥
रुकी लेखनी बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके सब, करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान्॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८५९)

भगवद्दर्शनका इससे स्पष्ट वर्णन एवं स्वीकारोक्ति और क्या होगी?

सन् १९२७ में ही अपनी अनुभूतिका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

ज्यों-ज्यों मैं पीछे हटता हूँ त्यों-त्यों तुम आगे आते।
छिपे हुए परदोंमें अपना मोहन मुखड़ा दिखलाते॥
पर मैं अन्धा नहीं देखता परदोंके अंदरकी चीज।
मोह-मुग्ध मैं देखा करता परदे बहुरंगे नाचीज॥
परदोंके अंदरसे तुम हँसते प्यारी मधुरी हाँसी।
चित्त खींचनेको तुम तुरत बजा देते मीठी बाँसी॥
सुनता हूँ, मोहित होता, दर्शनकी भी इच्छा करता।
पाता नहीं देख, पर जडमति इधर-उधर मारा फिरता॥
तरह-तरहसे ध्यान खींचते करते विविध भाँति संकेत।
चौकन्ना-सा रह जाता हूँ, नहीं समझता मूर्ख अचेत॥
तो भी नहीं ऊबते हो तुम, परदा जरा उठाते हो।
धीरेसे सम्बोधन करके अपने निकट बुलाते हो॥
इतनेपर भी नहीं देखता, सिंह-गर्जना तब करते।

तन-मन-प्राण काँप उठते हैं, नहीं धीर कोई धरते॥
डरता, भाग छूटता, तब आश्वासन देकर समझाते।
ज्यों-ज्यों मैं पीछे हटता हूँ, त्यों-त्यों तुम आगे आते॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२३५)

कुछ समय तक तो उन्हें भगवान्‌के विष्णुरूपके दर्शन, स्पर्श और वार्तालापका सौभाग्य प्राप्त होता रहा। सन् १९३१ में कल्याणका विशेषांक 'श्रीकृष्णांक' निकालनेकी तैयारीके समय श्रीकृष्णकी लीलाओंका गम्भीर चिन्तन, अनुशीलन हुआ। गौड़ीय सम्प्रदायके कुछ भक्तिपरक ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन हुआ। इसीके फलस्वरूप भगवान्‌की लीलायें देखनेकी लालसाका प्रादुर्भाव हुआ। एक बार उन्होंने अपने एक अन्तरंग परिकरको बताया था कि इन्हें उस समय ऐसा भान हुआ कि भगवान् कह रहे हैं—मेरे विष्णुरूपमें तो दो ही प्रकारकी लीला होती है—अवतार लीला या वैकुण्ठकी नित्य लीला। लीला सर्वोच्च रूपमें और पूर्णरूपमें हुई है—श्रीकृष्णस्वरूपमें। तुमको श्रीकृष्ण स्वरूपका अनुभव होने लगेगा। दूसरे दिन भगवान् विष्णुके ध्यानके समय बिना चेष्टाके अपने आप वृन्दावनबिहारी श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा। ध्यानके बाद वृन्दावनकी लीलाओंके दर्शन भी होने लगे। बादमें सन् १९३९ में जब वे दादरी एकान्त सेवनके लिये गये थे तब उन्होंने बताया था कि उनका श्रीराधा-कृष्णकी लीलाओंमें प्रवेश भी होने लगा था परन्तु उन्होंने बाहरके जीवनमें अथवा अपने काव्यमें इसे प्रकट होने नहीं दिया। सन् १९५६ के बाद जो पद रचना हुई उनमें यह स्पष्ट होने लगा। सन् १९५६ से १९६८ के बीच जो काव्य रचना हुई उसके आधारपर आगे उनकी दिव्य अनुभूतियोंके संकेत देनेका प्रयास किया जा रहा है—

अब उन्हें बाहरकी अत्यन्त क्रियाशीलतामें भी सर्वत्र सब समय श्रीकृष्णकी मुख-कान्तिके ही दर्शन होने लगे—

हटा मोहका पर्दा गहरा, मिटी सभी मनकी भ्रम-भ्रान्ति।
नहीं सताती अब मनकी कल्पित वह घोर अपार अशान्ति॥
क्रियाशीलता अति विशालमें भी रहती सुखदायिनि शान्ति।
क्योंकि दीख पड़ती मुझको सर्वत्र श्यामकी ही मुख-कान्ति॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२२८)

केवल मुख दर्शनकी बात ही नहीं, बल्कि उन्हें पाँचों इन्द्रियोंके पाँचों विषयोंमें श्रीकृष्णकी ही अनुभूति निरन्तर होती थी। देखिये—

आज मिल गया मुझे सहज ही प्रभुका मधु-मङ्गल वरदान।
शब्द-शब्दमें सुन पाता मैं अतः तुम्हारा ही गुण-गान॥
देख पा रहा अखिल विश्वमें रूप तुम्हारा ही अभिराम।
स्पर्श पा रहा स्पर्शमात्रमें एक तुम्हारा ही सुखधाम॥
गन्धमात्रमें पाता मैं नित अङ्ग-गन्ध तव परम मधुर।
प्रति रसमें पा रहा तुम्हारा नित्य दिव्य रस सुधा-अधर॥
एक तुम्हारे सिवा कहीं भी कुछ भी नहीं बचा अवशेष।
इससे होता कभी न प्रभुके दर्शनका अभाव लवलेश॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११८८)

इसके बाद श्रीकृष्ण उन्हें प्रियतम रूपसे मिल गये। प्रियतम हो जानेपर उनके जीवनकी सारी साध पूरी हो गयी। इसे श्रीपोद्दारजीने स्पष्ट स्वीकार किया है—

मिले मधुर मुझको, मेरे हो, मेरे वे प्रियतम भगवान।
पूरी हुई साध जीवनकी, पूरे हुए सभी अरमान॥
बुझी सभी विषकी ज्वाला, कर रूप-सुधा-रसका मधु-पान।
हुई विकीर्ण किरण शुचि तनकी दिव्याभामय परम महान॥
छाया अति शीतल प्रकाश सर्वत्र, मिटा सब तम-अज्ञान।
दिखने लगे श्यामसुन्दर मन-मोहन अब सर्वत्र समान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२१७)

बिना किसी शब्दजालके उन्होंने स्पष्ट लिख दिया कि मेरे जीवनके सब अरमान पूरे हो गये और सर्वत्र मुझे श्रीश्यामसुन्दर दिखायी देने लगे।

इसके थोड़े समय बाद अकेले श्रीश्यामसुन्दरके स्थानपर प्रिया-प्रियतम दोनों आ गये। इसका भी स्पष्ट वर्णन निम्न पदमें है—

कर दिया प्रभुने मुझे निहाल। हटा आवरण, कटा जंजाल॥
दीखते अनावरण नँदलाल। बजाते मुरली मधुर रसाल॥
सदा-सर्वत्र सभीमें श्याम। विविध लीला करते अभिराम॥
खेलते अपनेमें अविराम। भरे होठों मुसकान ललाम॥
बनाकर विविध वेष औ साज। साथ ले तत्-अनुकूल समाज॥
गान गाते ही उठते गाज। रचाते कभी मिटाते राज॥
नित्य रसरूप रसिक-सिरमौर। एक ही तत्त्व, न कोई और॥

बहाते रस-धारा सब ठौर। युगल मनमोहन श्यामल-गौर॥
सर्वपर, सर्व सर्व-अधिराज। एक ही, दो बन, रहे विराज॥
देख मैं महाभाव-रसराज। हो गया सफल, मिटे सब काज॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११२६)

श्रीपोद्दारजीने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि प्रिया-प्रियतमके दर्शनसे केवल जीवन ही सफल नहीं हुआ बल्कि अब कोई कर्तव्य भी शेष नहीं बचा। न तो कोई प्राप्तव्य शेष रहा और न कर्तृत्व ही। यह स्थिति केवल एकान्त कमरेमें बन्द होनेपर रहती हो, सो बात भी नहीं। देखिये—

रहूँ भले यात्रामें, चाहे करूँ कहीं भी—घर-वन वास।
नहीं अकेला मैं हूँ रहता, प्रभु नित रहते मेरे पास॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२२७)

केवल प्रिया-प्रियतमके दर्शन होते हों या वे साथ रहते हों; इतनी बात ही नहीं थी। हर समय उनकी लीलायें भी श्रीपोद्दारजीके दृष्टिपथपर रहती थी। इसीलिये उनका मन बाहर नहीं आ सकता था—

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द, अलक्षण॥
कौन बताये? किसे? वहाँके कैसे अनुभव।
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव॥
बाहर आते समय रोक देती वह लीला।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला॥
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव॥
चलती लीला ललित अपरिमित नित नव नूतन।
कुसुम-सरोवर ही क्यों, अगणित सर-निकुञ्ज-वन॥
मधुर, मनोहर, सुधामयी लीला नित होती।
जगी उसीमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती॥
मन-इन्द्रिय, सब अङ्ग, बुद्धि उसमें ही तन्मय।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११२८)

आगे चलकर तो यह स्थिति निरन्तर रहने लगी। एक क्षणके लिये भी

मन बाहर आनेको तैयार नहीं था। ऐसे एक नहीं अनेक पद हैं—

क्षणभर नहीं छोड़ते मोहन, नित्य बने रहते हैं सङ्ग।
देश-कालका भेद नहीं कुछ, पल-पल उठती अमित उमङ्ग॥
घरमें-वनमें, बाहर-भीतर, बहुत काममें, या बेकाम।
शयन-जागरण, खान-पानमें-संग सदा ही रहते श्याम॥
भोग-वासना मिटी सभी, मिट गया मोक्षका भी व्यामोह।
रहे एक वे नागर नटवर नित्य निरंतर बिना बिछोह॥
नहीं लोक-परलोक किसीका रहा कहीं कोई भी अर्थ।
सभी समय सर्वत्र स्वयं वे नाच रहे बिशुद्ध परमार्थ॥
इन्द्रिय-मन-मति—सभी हो गये श्यामरूप बनकर अति धन्य।
रहा न प्राणि-पदार्थ दूसरा, श्याम एक रह गये अनन्य॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११२१)

जो लोग पूज्य राधा-बाबाके निकट सम्पर्कमें आये हैं वे जानते हैं कि उनका शास्त्रोंका अध्ययन बड़ा गहन था तथा वे उद्‌भट विद्वान् थे। इतना ही नहीं उनकी स्वयंकी आध्यात्मिक स्थिति हमारी कल्पनाके परेकी थी। उन्होंने श्रीपोद्दारजीके लिये अपनी लेखनीसे लिखा है—

'श्रीहनुमानप्रसादजीका सूक्ष्म शरीर बिल्कुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है अर्थात् इन्द्रिय-गोलकोंके सहित जो पाञ्चभौतिक ढाँचा है, केवल उतना ही बचा है। बाकी सबका सब पूरा-का-पूरा राधाजीके रूपमें परिणत हो गया है। आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें भी नहीं पढ़ा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगत्‌के इतिहासमें भाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ बिरले महात्मा हुए होंगे पर वह बात प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर मालूम पड़ता है, शास्त्रमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया। ऐसी स्थिति होनेपर एक क्षणके लिये भी बाह्य जगत्‌की स्फूर्ति नहीं होती।'*

इस बातकी प्रामाणिकता उनके पदोंमें भी स्पष्ट मिलती है। बहुत बार तो रात-दिन, प्रातः या सन्ध्याका कुछ भी उन्हें पता नहीं लगता। क्योंकि चाहे जाग्रत् अवस्था हो या स्वप्न, दिखायी देते हैं केवल श्रीश्यामसुन्दर। फिर अपने नामकी भी सुध-बुध कहाँ रहे। कुछ पद देखिये—

पता नहीं कुछ रात-दिवसका, पता नहीं कब संध्या-भोर।
जाग्रत्-स्वप्न दिखायी देता श्याम सदा मेरा चितचोर॥
भूल गयी मैं नाम-धाम निज, भूल गयी सुधि-हूँ मैं कौन।

नयन नचाकर, प्राण हरण कर, खड़ा हँस रहा धरकर मौन॥
मनसा मिल रहते मेरे सब अङ्ग नित्य प्रियतमके अङ्ग।
नहीं छूटता कभी, सभी विधि रहता सदा श्यामका सङ्ग॥
रसमय हुई नित्य रस पाकर रसिक-रसार्णवका सब ओर।
बही रस-सुधा-सरिता-धारा प्लावित कर सब, रहा न छोर॥
श्याम रहे या रही मैं—कहीं, कुछ भी नहीं रहा संधान।
श्याम बने मैं, श्याम बनी मैं, एकमेक हो रहे महान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५०५)

× × × ×

हटते नहीं एक पल भी वे मुझे छोड़कर प्रियतम श्याम।
सोते-जगते, खाते-पीते, हरदम रहते पास ललाम॥
नित्य दिखाते रहते अपनी अति पवित्र लीला सुख-धाम।
बाहर-भीतर, तनमें-मनमें देते रहते सुख अविराम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११२५)

× × × ×

रहूँ कहीं कैसे भी, रहते नित्य साथ मेरे भगवान।
जाऊँ कहीं, वहीं दिखती मुझको उनकी मधु मूर्ति महान॥
बसे सदा मेरे अंदर, वे बाहर भी नित रहते पास।
ममता-मोह मरे सब जगके, प्रभुमें हुआ पूर्ण विश्वास॥
पाप-ताप, भय-शोक मिटे सब, नष्ट हो गया मोह समूल।
मिटे मोहके कार्य भयानक, सभी जातिके सारे शूल॥
मधुर-भयानक जगका कुछ भी, कैसा भी परिवर्तन आज।
दिखता मुझे मधुर लीलामय प्रभुका ही सब लीला-साज॥
प्रभुके दर्शन-स्पर्श-मिलनसे नित्य मिटे जगके सब द्वन्द्व।
परम शान्तिसे पूर्ण विलक्षण छाया नित्य परम आनन्द॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११८९)

× × × ×

रहते मेरे साथ निरन्तर, प्रभु क्षण दूर नहीं होते।
अनुभव सदा कराते अपना हर स्थितिमें जगते-सोते॥
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, वे रहते नित्य पास मेरे।

रहते नित भीतर-बाहरसे चारों ओर मुझे घेरे॥
वे मेरे कैसे अपने हैं, इसे बताऊँ मैं कैसे।
अनुभव होता है, पर नहीं बता सकता गूँगा जैसे॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११७२)

बिना श्रीराधाजीके साथ तादात्म्य हुए यह कौन लिख सकता है कि मेरे सारे अंग नित्य प्रियतमके अंगसे मिले रहते हैं। कभी भी श्रीश्यामसुन्दरका संग छूटता ही नहीं। श्याम 'मैं' बन गये और मैं श्याम बन गयी। दोनों एकमेक हो गये। यह अनुभूति महाभाव-रसराजकी निभृत-निकुंज लीलाकी ओर इंगित करती है। जहाँ प्राणोपम प्रिय प्रधान सखियोंका प्रवेश भी सम्भव नहीं होता। इसीलिये पूज्य राधाबाबाका यह लिखना कि ''श्रीहनुमानप्रसादजीका सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है'' उनके रचित पदोंसे भी प्रमाणित होता है।

यहाँ तो कुछ पद केवल संकेतके रूपमें ही दिये गये हैं। ऐसे पद तो 'पद-रत्नाकर' में बहुत हैं। 'अनुभूति' शीर्षकके अन्तर्गत सवा सौ से ऊपर पद प्रायः ऐसे ही हैं। जीवनके अन्तिम दस-बारह वर्षोंमें तो श्रीपोद्दारजीको मानसिक वृत्तियोंको जागतिक धरातलपर रखनेके लिये संघर्ष करना पड़ता था। पर इस संघर्षके बाद भी वृत्तियाँ बलात् उस लीला राज्यमें चली जाती थी। यह एक अद्‌भुत विवशता थी। यह एक ऐसी अनोखी बात थी जिसका वर्णन शब्दोंके द्वारा संभव ही नहीं है—

भीतर कोटि-कोटि रबि राजत, बाहर घोर अँधेरी रात।
भीतर खुले द्वार रस गृहके, बाहर लगे कठोर कपाट॥
बाहर निर्जनता-नीरवता, भीतर लगी रूपकी हाट॥

जो वस्तु मन-बुद्धिसे भी परे है, जिसे अनिर्वचनीय ही नहीं, अचिन्त्य भी कहा गया है; वह न वाणीमें आ सकती है और न उसे समझानेके लिये शब्द ही है। परन्तु जितना शब्दोंके माध्यमसे प्रकट हो सकता है उसमें श्रीपोद्दारजीने कोई कसर नहीं रक्खी।

मेरे मङ्गलमय रसमय प्रभु रहते नित ही मेरे पास।
देते नव-नव नित्य मधुर आनन्द, विविध कर दिव्य विलास॥
डूबे रहते स्वयं, डुबाये रखते मुझको पारावार—
परम दिव्य रसके, स्वाभाविक करते विशद विशुद्ध विहार॥
नहीं अन्यको मुझे देखने देते, नहीं देखते आप।

करते रहते सदा मधुरतम दिव्य मुझीसे रस-आलाप॥
रखा नहीं मुझमें-अपनेमें किंचित् भेद-भिन्नता-भाव।
हुआ पूर्ण ऐकात्म्य, मिट गया मिथ्या सब अलगाव-दुराव॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२२०)

जीवनके अन्तिम १०-१२ वर्षोंमें भावुकजनोंके रसमय पत्रोंका उत्तर बहुत कम देते थे पर बहुतसे उत्तर पदके माध्यमसे ही देते थे। ऐसे पदोंकी रचना विपुल परिमाणमें हुई है जो केवल पत्रोंमें ही लिखे गये थे। उन पदोंको श्रीपोद्दारजी अपनी डायरीमें नोट कर लेते थे। 'पद-रत्नाकर' प्रकाशित होनेसे तो सभी ऐसे पद सर्वसुलभ हो गये हैं अन्यथा बहुतसे पत्रोंमें यह लिखा रहता था कि इस पदको कोई दूसरा व्यक्ति न पढ़े अथवा आदेश रहता था कि इस पदको केवल अमुक-अमुक व्यक्ति ही पढ़ सकते हैं। इसका प्रधान कारण संभवत: यही था कि उन पदोंमें स्वयंकी स्थिति, अनुभूतियोंका स्पष्ट वर्णन होता था। ऐसा एक पत्र उदाहरणके लिये प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रीहरि:

प्रिय ....   गोरखपुर २१-११-५९

सप्रेम हरिस्मरण। इधर तुम्हें डाकसे पत्र नहीं लिख सका। मनसे तो कई पत्र लिखे। लम्बे-लम्बे पत्र लिखे, क्या-क्या लिखा सो स्मरण नहीं है। ....को भी लिखा। पर काम बहुत अधिक रहा, फुर्सत मिली ही नहीं। इससे कागज कलमसे लिख नहीं पाया। ....सुना है तुम भी सत्संगके लिये जा रहे हो। बहुत अच्छी बात है भैया! सत्संगका परम लाभ उठावोगे। मैं तो कामसे फुर्सत ही नहीं पाता इसलिये सत्संगसे वंचित रहता हूँ। दूसरी बात एक और है—सत्संग भी कब और कैसे करूँ? एक हटे तब न दूसरेसे बात की जाय।

हटे वह सामनेसे, तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मनमें तो कैसे अन्यको लेखूँ॥
उसीसे बोलनेसे ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलती?
सुनाता वह मुझे मीठी रसीली बात है हरदम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम?
समय मिलता नहीं मुझको टहलसे एक पल उसकी।

छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसीके कामकी हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था उसीके सब॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४८२)

चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदय तें वह श्याम मूरति पल न इत उत जात॥

पर यहाँ तो केवल हृदयकी बात नहीं है। हृदयमें भी और बाहर भी—तब क्या किया जाय। किवाड़ बन्द किये पड़ा रहता हूँ। तुम लोग भाग्यवान हो, भैया! सत्संग कर पाते हो। यहाँ तो—

लुट गया डेरा, नहीं कुछ बच रहा, हर तरफ हर वक्त ऊधम मच रहा।
कर रहा वह है शरारत दिन औ रात, हो गई मेरी वे सारी किश्तें मात॥

इस श्याम-सागरमें डूबनेपर किसीको निकलते नहीं देखा। उस नशेमें चूर होनेपर कोई सयाना नहीं हुआ। सयाना हो गया तो उसने प्रेम-मदिराका पान किया ही नहीं।

तुम लोगोंकी याद अब यादके रूपमें नहीं रह गयी। वह वृत्ति नहीं; स्वभाव-सा बन गया है। क्या किया जाय, यह भी विलक्षण है।

तुम्हारा - हनुमान

इस पत्रसे यह सर्वथा स्पष्ट है कि इस पदकी रचना श्रीपोद्दारजीने अपनी स्थितिका वर्णन करनेके लिये की है। इस पदका वर्गीकरण पद-रत्नाकरमें'प्रेम-समुद्रकी मधुर तरंगे'के अन्तर्गत किया गया है। यही बात उनके अधिकांश पदोंके लिये है। इसी तरह श्रीराधा-माधवकी लीलाओंके वर्णन तथा श्रीकृष्ण एवं श्रीराधारानीके प्रेमोद्गार श्रीपोद्दारजीकी स्वयं देखी हुई लीलाओं एवं सुने हुए संवादोंके शब्द चित्र हैं; जिसका संकेत उनके 'पद-रत्नाकर'के निवेदनमें स्पष्ट है। इतना ही नहीं कुछ पदोंके लिये तो उन्होंने स्पष्ट बताया था कि इस पदके एक-एक शब्द ज्यों-के-त्यों श्रीकृष्ण अथवा श्रीराधारानीके हैं। इसीलिये ये पद व्रजभावके उपासकोंके लिये केवल सम्बल ही नहीं उनके प्राण हैं जिनके आधारपर वे आँखें बन्द करके दौड़ सकते हैं।

महाभावमयी श्रीराधाके दिव्य प्रेमके अत्युच्च भावोंकी स्फूर्ति-अनुभूति स्वयं श्रीपोद्दारजीको होती थी। उनके एक भावको 'प्रेम वैचित्त्य' का नाम दिया

गया है। इसमें निकुंजमें व्यवधानशून्य श्रीकृष्णके मिलनकी स्थितिमें श्रीराधाजीको अमिलनकी अनुभूति होने लगती है। उस समय श्रीराधाजीके उद्‌गारोंसे श्रीकृष्ण परम सुखानुभव करते हैं। ऐसे उद्‌गारोंका श्रीराधाजीके नामसे तो 'पद-रत्नाकर'में विशद वर्णन है ही कहीं-कहीं श्रीपोद्दारजीने अपनी अनुभूतिके भी ऐसे वर्णन किये हैं—

प्रियके अमिलन-जनित दुःख-चिन्तनमें रात-दिवस कटते।
प्रियकी मोहन मूर्ति, मधुर वे भाव नहीं मनसे हटते॥
जान रहा ही नहीं, देख मैं रहा सदा तव मनके चित्र।
अष्टयाम मैं बसा निरखता, उठते जो मधु भाव पवित्र॥
नित्य मिलनमें अमिलनकी यह पावन प्रेममयी अनुभूति।
प्रेम-राज्यकी परम मधुर आदर्श विलक्षण विमल विभूति॥
इससे होनेवाले दुख-सुखका मैं ही अनुभव करता।
एक पलक भी कभी तुम्हारे बिना नहीं मुझको सरता॥
रोते कभी, हृदयमें जलती विषम विरहकी अति ज्वाला।
कभी मिलनमें हँसते बनते तुरत परस्पर गल-माला॥
बने परस्पर प्रेमास्पद-प्रेमी हम करते नित नव खेल।
छिपते, कभी प्रकट होते, पर रहता नित स्वरूपगत मेल॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११३४)

श्रीमद्‌भागवतमें एक ही श्लोक दो बार आया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

भगवत्संगीका संग यदि लवमात्रके लिये भी मिल जाय तो उसकी तुलना यहाँके भोगोंकी तो बात ही नहीं स्वर्गसे भी नहीं होती; वरं अपुनर्भव-मोक्षसे भी नहीं होती। साधारण बुद्धिसे समझमें नहीं आता कि भागवतकारने किसके लवमात्रके संगको मोक्षसे भी बढ़कर बता दिया जबकि परमात्म- तत्त्वके साधकोंका सबसे बड़ा प्राप्तव्य पुरुषार्थ मोक्ष ही है। उपरोक्त अनुभूतियोंको गहराईसे देखनेपर जहाँतक बुद्धि कुछ प्रवेश कर सकती है यही प्रतीत होता है कि श्रीपोद्दारजी जैसे भगवत्संगीके संगको ही मोक्षसे बढ़कर बताया जा सकता है; क्योंकि उनके लवमात्रका संग उस लीला राज्यमें प्रवेश करा देगा जिसकी अनुभूति सब ब्रह्मनिष्ठोंको भी होनी आवश्यक नहीं है।

श्रीपोद्दारजीके जीवनकालमें ही उनकी प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता एक सच्चे पथ-प्रदर्शक संतके रूपमें हो गयी थी। जन-जनके मानस पटलपर उनके मधुर अलौकिक व्यक्तित्वका इतना अधिकार हो गया था कि वे अपनी गुप्त-से-गुप्त समस्याका भी समाधान पत्रके माध्यमसे अथवा स्वयं मिलकर श्रीपोद्दारजीसे करवाना चाहते थे। श्रीपोद्दारजी भी यथासाध्य पत्रोत्तर द्वारा अथवा पूछनेपर उसका पूर्ण संतोषजनक समाधान कर देते थे। पर पिछले वर्षोंमें पत्र लेखनका कार्य बन्द-सा हो गया था। भाव-समाधिमें अधिक समय रहनेपर मिलनेवाले महानुभावोंकी समस्याओंका समाधान श्रीपोद्दारजी जागतिक स्थितिमें रहते तब तो कर देते थे अन्यथा लोगोंको समाधान प्राप्त करनेमें निराश होना पड़ता था। अपनी विवशता तथा उसके हेतुकी अभिव्यक्ति इस पदमें देखिये—

नाथ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमनेवाले रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक॥
आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत्, सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२४६)

सच्ची बात तो यह है कि श्रीपोद्दारजीका जीवन इतना दिव्य एवं अलौकिक हो गया था कि प्राकृतिक शब्दोंके द्वारा तथा प्राकृतिक मन, बुद्धिके द्वारा वह न समझा जा सकता है और न समझानेका प्रयास ही किया जा सकता है। अन्तमें तो श्रीपोद्दारजी लिखने लगे—

नहीं कामका रहा, छोड़ दो इसकी आशा।
रक्खोगे, तो तुम्हें मिलेगी नित्य निराशा॥
भस्म हो गयी बुद्धि जागतिक जल-भुनकर सब।
रही न कोई इसमें भोग-विचार-भूमि अब॥
क्या करना, क्या नहीं—सोच सकता न तनिक यह।
सदा सहज ही उदासीन रहता, सब कुछ सह॥
होता, जो होना है, उसके ही करनेसे।
नहीं इसे कोई मतलब जीने-मरनेसे॥

नहीं रहा अब किसी द्वन्द्वसे भी परिचय है।
हुआ करे कुछ भी, यह तो अब नित निर्भय है॥
लिखता-लिखवाता वही, करता-करवाता वही।
पता नहीं क्या गलत है, पता नहीं क्या है सही॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११५०)

तुमने जो कहलाया मुझसे, वही कहा मैंने अविकल।
तुमने जो करवाया मुझसे, वही किया मैंने निश्छल॥
तुमने जो सिखलाया मुझको, सीखा मैंने वही सकल।
तुमने जो दिखलाया मुझको, देखा मैंने वही अकल॥
यह जो कुछ भी कहा, किया, सीखा, देखा मैंने प्रियतम!
सो सब तुमने ही अपनेमें अपनी की लीला उत्तम॥
मन-मति कैसे होते मुझमें, जब मैं ही हूँ नहीं स्वयम्।
बना तुम्हारा ही सुख-सदन, तुम्हीं इसमें रहते हरदम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११४६)

यहाँ तो स्पष्ट लिखते हैं कि 'लिखता-लिखवाता वही, करता-करवाता वही।' और तो क्या यह जो कुछ भी मैंने कहा, किया, देखा वह सब प्रियतम तुमने ही अपनेमें अपनी लीला की। बस, मेरे तो अब अन्तरकी वृत्ति एक ही रसके आस्वादनमें सदा सर्वदा मत्त रहती है—

दिनकर उगता, रजनी आती, कालचक्र चलता अविराम।
जीवमात्र सब निज-निज रुचिके करते भले-बुरे सब काम॥
पर जाती न वृत्ति अन्तरकी काल-कर्म-कर्त्ताकी ओर।
रहती नित्य एक ही रसके आस्वादनमें मत्त-विभोर॥
सोते-जगते होते रहते सहज प्रकृतिवश सारे काम।
किंतु बसा रहता मनमें कुछ 'अन्य-विलक्षण' आठों याम॥
नहीं हटाया हटता पलभर, नहीं छूटता किसी प्रकार।
दुःख परम शुचि नित्य परम सुख देता रहता वह अविकार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११९९)

पूज्य राधाबाबा कई बार कहा करते कि श्रीपोद्दार महाराजके स्थूल ढाँचेमें जिसे भगवान् नहीं दीखते, उनकी आँखोंमें 'दृष्टि' नहीं है। हनुमानप्रसाद तो कभीका मर चुका। इस ढाँचेके अन्दर तो केवल भगवान् ही क्रियाशील हैं और यह ढाँचा उनके संकल्पसे ही ठहरा हुआ है। यह बात पूज्य बाबा अपनी भावनासे कहते

हों ऐसी बात नहीं थी। स्वयं श्रीपोद्दारजीने अपने काव्यके माध्यमसे स्पष्ट स्वीकार किया है कि उनके द्वारा जो कुछ भी होता है वह सारा-का-सारा कार्य भगवान् स्वयं कर रहे हैं। न तो 'मैं' हूँ और न कुछ 'मेरा' है। यह पाञ्चभौतिक ढाँचा भी भगवान्‌ने ही अपने कामके लिये बना रखा है। इसके सब कल-पुर्जे उनके नियमनमें चलते हैं। इस ढाँचेमें तो सब क्रियाएँ केवल होती दिखायी देती हैं। कर्त्ता कोई और है।

मेरे द्वारा होता जो कुछ, करते वह सारा भगवान।
'मैं' न रहा, 'मेरा' न रहा कुछ, कर्त्ता कौन, कहाँ अभिमान॥
ढाँचा एक बना रक्खा है अपनेसे ही अपने काम।
नियमित सब चलते कल-पुर्जे, होती दिखती क्रिया तमाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११८०)

केवल इन्द्रियों और शरीरके ढाँचेकी ही बात नहीं है। उनके मनमें भी भगवान्‌का मन ही क्रियाशील है और सब कार्य कर रहा है। भगवान्‌के मनसे ही उनमें सारे संकल्प उदय होते हैं। उनके मनमें भगवान्‌के मनके अतिरिक्त कुछ बचा ही नहीं है। यद्यपि ऐसी स्पष्ट बातें वे अपने मुँहसे कभी किसी अन्तरंग अनुगतके सामने भी नहीं बोलते थे पर काव्यमें अप्रत्याशित रूपसे व्यक्त हो गये। देखिये—

मेरे मनमें नित प्रविष्ट रह, ईश्वरका मन करता काम।
ईश्वरके मनके ही होते उदय दिव्य संकल्प ललाम॥
रहा न मेरे मनमें कुछ भी, ईश्वरके मनके अतिरिक्त।
रहता सदा इसीसे वह मधुरमय भगवद्-रससे अभिषिक्त॥
मेरे मनको नित्य बनाये रखते प्रभु निज मनका यन्त्र।
करते उससे अपने मनकी मनमोहन वे परम स्वतन्त्र॥
रहा न कोई मुझमें करनेवाला अब शुचि-अशुचि विचार।
अन्तर्द्वन्द्व मिट गये सारे, मिटे मोहके सभी विकार॥
प्रभुके मनमें निजको खोकर, मन हो गया अमन मेरा।
उठा असत् आशा-तृष्णाका, ममताका सारा डेरा॥
क्रीड़ा करते अब उसमें, उससे प्रियतम इच्छा-अनुसार।
करते रहते नित उसमें, उससे वे अब स्वच्छन्द विहार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११८१)

अन्यत्र और भी स्पष्ट लिखा है—

उतरे स्वयं मलिन जीवनमें मेरे परम सुहृद भगवान।

लेकर प्रेम-ज्ञान-रसकी अति उज्ज्वल सम्पद अमित महान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११९०)

दूसरे स्थानपर लिखते हैं—

मेरा जो कुछ था, सब ही पर हुआ एक उनका अधिकार।
वे ही अब सब कुछ हैं मेरे—प्राण, हृदय, मन, प्राणाधार॥
रहे कहीं भी, कैसा भी, यह देह पाञ्चभौतिक, सविकार।
मैं उनमें, वे मुझमें, वे-मैं नित्य-निरन्तर एकाकार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११६८)

एक स्थानपर और श्रीपोद्दारजीने इतना स्पष्ट लिखा है जो देखते ही बनता है—

मेरे द्वारा बोल रहे हैं केवल मेरे वे भगवान।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मुरलीकी तान॥
मेरे जीवनमें है अब तो एकमात्र उनका ही स्थान।
अतः उन्हींकी होती मुझमें क्रिया नित्य सब क्षुद्र-महान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११२४)

ये पंक्तियाँ सितम्बर १९६० में लिखी गयी थी। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि कम-से-कम इसके बाद तो उनके पाञ्चभौतिक ढाँचेके द्वारा या वाणी अथवा मनके द्वारा जो भी चेष्टा हुई वह उनकी नहीं थी—उनके प्रियतमकी थी।

श्रीपोद्दारजीके काव्यके माध्यमसे उनके दिव्य जीवनको देखनेका यह एक सांकेतिक प्रयास है। व्रज-रस-रसिक और श्रद्धालु विज्ञजन पद-रत्नाकरमें गोता लगाकर यथाधिकार उनके दिव्य जीवनके अप्रकाशित आयामोंका उद्घाटन कर सकते हैं।

----×----

(२२)
श्रीपोद्दारजीके काव्यका कलापक्ष

भाषा— श्रीपोद्दारजी केवल रस-सिद्ध संत ही नहीं थे, वे काव्य-मर्मज्ञ उच्च कोटिके कवि भी थे। खड़ी बोली, व्रज-भाषा और राजस्थानी तीनों भाषाओंपर उनका समान अधिकार था। कहीं भी विधिवत् शिक्षा प्राप्त न करनेपर भी भाषापर उनका ऐसा अधिकार अत्यन्त विस्मयकारी है। खड़ी बोलीमें तो इतना सरस एवं भावपूर्ण काव्य दृष्टिगोचर ही नहीं होता। व्रजभाषाके पदोंका अनुशीलन करनेपर कोई नहीं कह सकता कि ये पद किसी ऐसे कवि द्वारा रचित हैं जिसने लम्बे समयतक व्रज क्षेत्रमें निवास ही नहीं किया और न जिसकी मातृभाषा ही व्रजभाषा थी। राजस्थानी तो इनकी मातृभाषा थी ही इसलिये उसके बारेमें तो कहना ही क्या है? तदनुसार ही इनकी वर्तनी भी है। व्रजभाषाके पदोंमें प्रायः 'श', 'ण', पंचम वर्ण, संयुक्ताक्षर आदि नहीं हैं और विभक्तियाँ भी अलग रखी गयी है। खड़ी बोलीमें संस्कृतके अनुसार तीनों 'श' 'ष' 'स' हैं। 'ण', पञ्चमवर्ण तथा संयुक्ताक्षर भी हैं और विभक्तियाँ भी प्रायः सटाकर ही लिखी गयी हैं। इनके साथ ही कुछ पद तो शुद्ध उर्दूमें भी रचित हैं। देखिये—

मुहब्बत जालिमोंसे की जोड़ इखलास पुर दिलसे,
किया इख्तलाफ नेकोंसे, बताऊँ क्या तुझे कैसे?
डराया बेगुनाहोंको, औ लूटा बेबसोंको खूब,
मिटायी आब आदिलकी, करूँ अब क्या, कहो, कैसे?
छोड़ खिदमत खुदा! तेरी, करी अख्तियार बेशर्मी,
बेवफा बन करी चुगली, बचाऊँ अब, कहो, कैसे?
मिटा इन्सानियत सारी, बना खूँखार बेहद मैं,
जान ली बेजुबानोंकी, डरूँ अब मैं नहीं कैसे?
बितायी आशनाईमें उम्र, हो बेहया पूरा,
मागूँ अब किस तरह माफी, सजासे अब बचूँ कैसे?

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०४)

संस्कृत रचना भी द्रष्टव्य है—

नारायणं हृषीकेशं गोविन्दं गरुड़ध्वजम्।
वासुदेवं हरिं कृष्णं केशवं प्रणमाम्यहम्॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५२)

राजस्थानी भाषाके पद भी विभिन्न बोलियोंमें है और वे इतने मधुर हैं कि उस बोलीको बोलनेवालोंके कंठहार बन गये हैं। एक पद पढ़िये—

नाथ मैं थारो जी थारो।
चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूँ सो थारो॥
बिगड़्यो हूँ तो थाँरो बिगड़्यो, थे ही मनै सुधारो।
सुधर्‌यो तो प्रभु सुधर्‌यो थाँरो, थाँ सूँ कदे न न्यारो॥
बुरो, बुरो, मैं भोत बुरो हूँ, आखर टाबर थारो।
बुरो कुहाकर मैं रह जास्यूँ, नाँव बिगड़सी थारो॥
थारो हूँ, थारो ही बाजूँ, रहस्यूँ थारो थारो।
ऑगलियाँ नुँह परै न होवै, या तो आप बिचारो॥
मेरी बात जाय तो जाओ, सोच नहीं कछु म्हारो।
मेरे बड़ो सोच यो लाग्यो बिरद लाजसी थारो॥
जचे जिस तराँ करो नाथ! अब, मारो चाहै त्यारो।
जाँघ उघाड़्याँ लाज मरोगा, ऊँडी बात बिचारो॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३०)

काव्य सौन्दर्य—

सचमुच ही हिन्दी साहित्यमें खड़ी बोलीमें इतना भावपूर्ण सरस काव्य श्रीपोद्दारजीकी अप्रतिम देन है। सरसताके साथ-साथ चित्रात्मकता इन पदोंकी अपनी विशेषता है; जो श्रीपोद्दारजीको अन्य कवियोंमें अग्रिम पंक्तिमें खड़ा करती है। शब्दोंका ऐसा सुदृढ़ संयोजन है जो एक अप्रतिम सुन्दर, भावपूर्ण चित्र उपस्थित कर देता है।

पद-रत्नाकरका भाव-पक्ष तो इतन प्रबल है कि वह काव्यके अन्य सभी गुणोंकी ओर दृष्टि डालनेका अवसर ही नहीं देता पर कला-पक्षका विवेचन करें तो वह भी श्रीपोद्दारजीकी काव्य मर्मज्ञताका प्रबल प्रमाण है। बाबू गुलाबरायजी अपनी पुस्तक 'सिद्धान्त और अध्ययन'में गीत काव्यके गुण बताते हुए लिखते हैं—'संक्षेपमें गीत-काव्यके तत्त्व इस प्रकार हैं—संगीतात्मकता और उसके अनुकूल

सरस प्रवाहमयी कोमल-कान्त पदावली, निजी रागात्मकता, संक्षिप्तता और भावकी एकता, यह काव्यकी अन्य विधाओंकी अपेक्षा अधिक अन्त:प्रेरित होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमताका अभाव रहता है।'

श्रीपोद्दारजीकी सम्पूर्ण काव्य रचनामें गीत काव्यके ये सभी लक्षण विविधतासहित पूर्ण रूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। हृदयके सरस, कोमल प्रेमकी भावनाओंको व्यक्त करनेके लिये गीत शैली ही अधिक उपयुक्त होती है और उनकी सारी काव्य रचना इसी शैलीमें हुई है। पद-रत्नाकरकी पद शैली मुख्यत: मुक्तक है। मुक्तकका प्रत्येक पद स्वत: पूर्ण होता है। यह रचना स्वच्छंद होती है। अन्त:प्रेरित आत्माभिव्यंजनके लिये मुक्तक-काव्यको अधिक उपयुक्त माना जाता है क्योंकि रचनाकारकी विभिन्न मन:स्थितियोंको अभिव्यक्त करनेमें ये पूर्ण सक्षम होते हैं। मुक्तक काव्यके लिये सर्वाधिक उपयुक्त गीत शैली वाले पदोंमें संगीतके राग-ताल आदि तत्त्वोंकी प्रधानता होती है। इनके सभी पद राग-रागिनियों और तालमें आबद्ध हैं। आधुनिक कालके भक्ति-काव्यमें काव्य एवं संगीतका ऐसा दुर्लभ सामञ्जस्य श्रीपोद्दारजीके काव्यमें ही उपलब्ध है। कुछ पदोंकी रचना दोहोंमें है। ये दोहे भी अत्यन्त सरस और प्रभावोत्पादक है। दोहोंमें गागरमें सागर भरनेके लिये कवि बिहारी प्रसिद्ध है पर श्रीपोद्दारजीके दोहे भी इस कसौटीपर खरे उतरते हैं—

प्रेग अगाध उदधि सरिस, अतिशय तल गंभीर।
बिरले पहुँचे अतल तल, ठाढ़ि रहे सब तीर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६७०)

अलंकार—

काव्यमें अलंकारका महत्त्व भारतीय आचार्योंने प्राचीन कालसे ही स्वीकार किया है। काव्यकी शोभा-विधायक बाह्य तत्त्वको अलंकार कहा गया है। जो महत्व शरीरके शृंगारके लिये आभूषणोंका है वही काव्यमें अलंकारोंका माना जाता है। इसीलिये प्रत्येक कवि अलंकारोंका उपयोग करते हैं। पर श्रीपोद्दारजीके काव्यमें अलंकारोंका प्रयोग उसे सजानेकी दृष्टिसे नहीं हुआ है। उनके पदोंमें अलंकार सहज ही समाहित हैं।

रीतिकालीन कवियोंकी तरह काव्यको सजानेके लिये श्रीपोद्दारजीने अलंकारोंका प्रयोग नहीं किया है। 'कल्याण'के सम्पादकके नाते श्रीपोद्दारजीका शब्द-भण्डार अक्षय था। इसी कारण अनुप्रास अलंकार तो उनके काव्यमें सहज उपलब्ध है। यह कहना भी संभवत: अतिशयोक्ति नहीं होगा कि अनुप्रास अलंकार तो उनके

प्राय: सारे पदोंमें दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं तो वह पंक्तिके प्रत्येक शब्दमें मिलता है—

अज अनादि अविगत अलख, अकल अतुल अविकार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ९००)

कहीं-कहीं प्रत्येक शब्दमें न होनेपर भी अनुप्रास बड़े सहज रूपसे प्रकट होकर विशेष मधुरताकी सृष्टि करता है—

चतुर चंचल चपल चित-चोरको जो पकड़ पाऊँ मैं।
छबीले छैल छरहर को तुरत छाती छिपाऊँ मैं॥
रसीली रसभरी रसकी उसे चर्चा सुनाऊँ मैं।
मधुर मिश्री-मिला माखन उसे ताजा खिलाऊँ मैं॥
जड़ाऊँ जेवरों, जामों, जरीसे शुचि सजाऊँ मैं।
सुमन सुरभित सुपल्लव मृदुलकी शय्या रचाऊँ मैं॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४५१)

एक उदाहरण और देखिये—

सबमें सब देखें निज आत्मा, सबमें सब देखें भगवान।
सब ही सबका सुख-हित देखें, सबका सब चाहें कल्यान॥

पुनरुक्ति अलंकार—

पुनरुक्ति अलंकार भी ग्रन्थमें बहुत स्थानोंपर मिलता है। जैसे—

पल-पल नव-नव पूजन पद्धति, पल-पल नव-नव रस आस्वाद।
पल-पल बढ़त सहज-सुख सुख रुचि, सुख रति नव-नव बिनु मरजाद॥

यमक अलंकार—

यमक अलंकार भी कई स्थानोंपर दृष्टिगोचर होता है। यथा

दुरलभ झाँकी प्रेमकी, जिन झाँकी ते धन्य।

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६४/४)

स्याम-बदन महँ स्याम रंग रचि, स्याम-रूप लहि अति सुख पैहौं॥

उपमा अलंकार—

काव्यका सर्वाधिक प्रिय और चर्चित अलंकार उपमा है। श्रीपोद्दारजीके काव्यमें भी उपमाओंका यथोचित प्रयोग हुआ है। अनेकानेक पदोंमें सुमनोहर उपमाओंकी योजना देखते ही बनती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) तिरछी नजर मधुर बरछी-सी उर बिच आन लगी।

(२) मिले श्याम-श्यामा दोनों तब उमड़ा अतिशय प्रेम।
मरकत मणि से लिपटा जैसे, रसमय उज्ज्वल हेम।
(३) तरुन तमाल, कनक लतिका सम, नित्य मिलित तजि निज पर।
(४) जलद निरखि ज्यों तृषित चातकी चित्त निरतिशय हरषत।

अधोलिखित एक ही पदमें श्रीपोद्दारजीने एक साथ मालोपमा, पूर्णोपमा और रूपक अलंकारका उपयोग करके श्रीकृष्णके रूपवर्णनको हृदयस्पर्शी बना दिया है—

निरखु सखि! कैसौ मोहन रूप।
निरखत नैन रहे अपलक ह्वै, बाढ़्यौ प्रेम अनूप॥
नव जलधर, मरकत मनि, नील सरोरुह-सम तन स्याम।
मनसिज-सर-सम तिरछे लोचन, कुंचित केस ललाम॥
कंठ सुसोभित गुंज-हार, सुंदर सुरभित बनमाल।
गुंजत मधुर मधुप मधु-लोभी, मृगमद-तिलक सुभाल॥
व्रज-जुबतिन मुनि-मनहर कोमल अरुन चरन-अंभोज।
पूजन चहत नित्य तिन कौं मन, दै निज कमल-उरोज॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ४४६)

अनन्वय अलंकार—

अनन्वय अलंकारका उपयोग भी श्रीपोद्दारजीने कई स्थानोंपर किया है। जहाँ उपमेयके सदृश किसी अन्य वस्तुको न बताकर उपमेयको ही उपमान कहा है। ऐसे प्रयोग अपने आराध्य श्रीकृष्ण और श्रीराधा दोनोंके लिये किये हैं। यथा—

राधा तुम-सी तुम्हीं एक हो, नहीं कहीं भी उपमा और।

(पद रत्नाकर, पद सं० ५५७)

अतिशयोक्ति अलंकार—

अतिशयोक्ति अलंकारकी छटा भी पद-रत्नाकरमें बहुत स्थानोंपर है। यथा—

(१) माखन-दधि-दुग्ध-सहित बही चली पावन।
डूबत सिसु-गनहि मातु लगी सब उठावन॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७६१)

(२) पल-पल जुग समान बीतत, नहिं अधम प्रान निसरै।

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०१)

उत्प्रेक्षा अलंकार—

उत्प्रेक्षा अलंकारका एक सुन्दर उदाहरण देखें—

देह-लता रोमांच अलंकृत पाकर वेणु-सुधा रसराज।
मानो प्रेम रूप पादप हो गया पल्लवित, मुकुलित आज॥

रूपक अलंकार—

श्रीपोद्दारजकी रचनाओंमें विभिन्न स्थलोंपर रूपकोंकी उपस्थिति स्वाभाविक रूपसे हुई है और उन्होंने श्रीराधा-कृष्णके प्रेम-भावोंको सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। प्रेम-समुद्रमें गोते लगाती हुई श्रीराधारानीके मुखसे रूपकोंकी एक लड़ी ही गूँथ दी है—

मेरे प्राणोंके स्पन्दन, मैं कभी न तुमसे न्यारी।
मेरे तुम मादक मधु हो, मैं नित्य रहूँ मतवारी॥
मेरे तुम फुल्ल कमल हो, मैं रस-मधुकरी तुम्हारी।
मेरे तमाल तरु हो तुम, मैं कनक लता रस-धारी॥
मेरे तुम चन्द्र कलाधर, मैं हूँ कुमुदिनी बनवारी।
मेरे प्रीतम तुम जलधर, मैं तृषित चातकी भारी॥

(पद सं० ४६४)

इसके अतिरिक्त अन्य अलंकारोंका भी सफल और सहज प्रयोग हुआ है यथा—दृष्टान्त, अन्योक्ति, अनुज्ञा, उल्लेख, विरोधाभास, विभावना आदि।

जिस काव्यमें भावपक्ष और कलापक्ष दोनोंका संतुलन और सामंजस्य रहता है उसे आचार्योंने श्रेष्ठ काव्य माना है। श्रीपोद्दारजीके काव्यमें भावपक्ष तो परम उत्कर्ष पर है ही कलापक्ष भी उच्च कोटिका होनेसे 'पद-रत्नाकर' निश्चय ही श्रेष्ठतम काव्यकी श्रेणीमें परिगणित होता है।

अन्य विशेषताएँ—कुछ पद तो श्रीपोद्दारजी द्वारा ऐसे रचित हुए हैं जिनका पूरा भाव वही व्यक्ति समझ सकता है जिसके लिये उस पदकी रचना हुई है; दूसरा व्यक्ति चाहे विद्वान् हो या साधक उसका पूरा भाव आत्मसात नहीं कर पाता। यहाँ केवल एक-दो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अनुज श्रीमोहनलालजी (जिन्हें उन्होंने अपना दत्तक पुत्र स्वीकार कर लिया था) की पोद्दारजीके प्रति गहरी श्रद्धा थी। एक बार श्रीमोहनलालजी अपनी धर्मपत्नीसे असंतुष्ट होकर निकल गये। कई दिनोंतक उनका कोई पता नहीं चला, न उनसे सम्पर्क करनेका साधन था। अंतमें श्रीपोद्दारजीने एक युक्ति निकाल ली। एक मार्मिक पद-रचना करके उसे जनवरी सन् १९२८ के

‘कल्याण’ में प्रकाशित किया। उनका विश्वास था कि मोहन चाहे कहीं भी हो ‘कल्याण’ तो अवश्य देखेगा ही और यह पद पढ़कर वह जरूर लौट आयेगा। ठीक वही हुआ और वे घर लौट आये। पद नीचे दिया जा रहा है—

सकुच भरे अधखिले सुमनमें छिपकर रहता प्रेम-पराग।
नव-दर्शनमें मुग्ध प्राणका होगा मूक मधुर अनुराग॥
भय-लज्जा, संकोच-सहम, सहसा वाणीका निपट निरोध।
वाचा रहित, नेत्र-मुख अवनत, हास्य-हीन बालकवत् क्रोध॥
जो उसने था किया, इसी स्वाभाविक रसका ही व्यवहार।
तो देना था तुम्हे चाहिये उसे हर्षसे अपना प्यार॥
हृदयंगम करना अवश्यक था वह सरल प्रणयका भाव।
नहीं तिरस्कृत करना था नवप्रेमिकका वह गूँगा चाव॥
प्रथम मिलनमें ही क्या समुचित है समस्त संकोच-विनाश।
क्या उससे वस्तुतः नहीं होता नवीन मधु-रसका नाश॥
नव कलिकाके लिये चाहना असमयमें ही पूर्ण विकास।
क्या है नहिं अप्राकृत और असंगत उससे ऐसी आस?
क्या नव-वधू कभी मुखरा बन कर सकती प्रियसे परिहास।
क्या वह मूर्खा या संदिग्धा बन सह सकती मिथ्या त्रास?
क्या वह प्रौढ़ा-सदृश खोल अवगुण्ठन कर सकती रस-भङ्ग?
क्या बहने देती, मर्यादा तजकर, सहसा हास्य-तरंग?
क्या ‘मूकास्वादनवत्’ होता नहीं प्रेमका असली रूप?।
क्या उसमें है नहीं झलकता प्रेम-पयोधि गँभीर अनूप?॥
क्या है नहीं प्रसन्न इष्टको मानस पूजा ही करती?
क्या वह नहीं बाह्य पूजासे बढ़कर इष्ट हृदय हरती॥
यदि नव प्रेमिकने तुमको पूजा केवल मनसे ही नाथ?
स्तम्भित, कम्पित, मुग्ध हर्षसे कह-सुन कुछ भी सका न नाथ॥
क्या इससे हे प्रेमिकवर प्रभु! हुआ तुम्हारा कुछ अपमान!
क्या इसमें अपराध मानते सरल भक्तका हे भगवान!॥
यदि ऐसा है नहीं देव! तो क्यों फिर होते अन्तर्द्धान?
क्यों दर्शनसे वञ्चित करते, क्यों दिखलाते इतना मान॥
क्यों आँखोंसे ओझल होते, पता नहीं क्यों बतलाते?
क्यों भक्तोंको सुख पहुँचाने नहीं शीघ्र सम्मुख आते?

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११०२)

इसी तरह एक पदमें श्रीपोद्दारजीने अपने एक आत्मीय साधकके स्वरूपका दिग्दर्शन कराया है।

बस गया उनके हृदयमें, हो गया जो उनका प्यारा।
सब अमङ्गल मिट गये उसके, हुआ वह सबसे न्यारा॥
दीखती जो तनिक उसमें दुःख-संकटकी-सी छाया।
है वह प्रियतमकी अनोखी प्रीतिकी शुचि मधुर माया॥
मलिन माया हरणकर वह नित्य निर्मल कर रही है।
दिव्य कर सब भाँति सब, चिन्मय मधुर रस भर रही है॥
बन रहा है प्राणधन श्रीश्यामका एकान्त-सेवी।
कर रहे हैं सभी अभिवादन समुद छिप देव-देवी॥
नहीं चिन्ताका तनिक भी कार्य-कारण-कल्पना है।
नहीं रोग-विषाद-भयकी तनिक-सी भी जल्पना है॥
स्वयंमें ही प्रेमधनकी प्रेमलीला चल रही है।
सभी तम-जडता सुद्युतिमय दिव्यतामें ढल रही है॥
नहीं चिन्ता, नहीं भय है, नहीं कहीं विषाद-कण है।
खेलते स्वच्छन्द निज गृहमें मधुर राधा-रमण हैं॥
देख पाता दिव्य नेत्रोंसे जो यह लीला परम है।
मुग्ध होता वह समझकर छिपा इसका मधु मरम है॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११३२)

श्रीपोद्दारजीके कुछ पद तो इतने लोकप्रिय हुए कि बहुतसे व्यक्ति तो उनका नित्य गायन करते हैं। कहीं-कहीं पद-रत्नाकरका नियमित सामूहिक पारायण होता है। सन् १९७७ में जब 'पद-रत्नाकर' प्रकाशित हुआ था तबसे आजतक कलकत्तेमें प्रत्येक रविवारको दो घंटे इन पदोंका क्रमशः सामूहिक गायन होता है। बहुतसे पदोंका अन्य भाषाओंमें अनुवाद भी हुआ है। विशेषतया 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा (षोडश गीत)' तो इतने लोकप्रिय हुए कि उनके अनुवाद अभीतक संस्कृत, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, अंग्रेजी, जर्मन, रशियन, बंगला, सिंधी, उड़िया, मराठी, व्रजभाषा तथा उर्दू आदिमें हो चुके हैं। कुछ अन्य सरस पदोंके अनुवाद श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने अंग्रेजीमें किये और कुछ सरस पदोंके अंग्रेजी अनुवाद भारत सरकार द्वारा प्रकाशित श्रीपोद्दारजीकी अंग्रेजीमें प्रकाशित जीवनीमें भी हुए हैं।

एक अन्य विशेषता श्रीपोद्दारजीके पदोंकी यह भी है कि कुछ संस्कृतके श्लोकोंका पद्यानुवाद मूलभावोंकी अक्षरशः रक्षा करते हुए किया गया है।

श्रीपोद्दारजीने काव्यके माध्यमसे भी सभीको सत्प्रेरणा दी है। यहाँ तक कि लोकगीतमें भी उन्होंने देशभक्ति, सदाचार पालन, शुद्ध सात्विक व्यापार आदिकी

प्रेरणा दी है।

----×----

(२३)
पद-रत्नाकर और सूरसागर

पद-रत्नाकर और सूरसागरका मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया जाय तो दोनोंमें सहज समानताएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों ही लोकरंजक प्रभु श्रीकृष्णकी लीलाओंके अथाह रत्नाकर हैं। दोनों ही प्रधानतया भक्ति-रसके गीति-काव्य हैं। दोनोंकी रचना शैली भी मुक्तक पदोंकी है। दोनोंके अध्ययनसे लगता है कि सिद्ध संतोंके लीला-दर्शनके दृश्योंमें कुछ भेद हो सकता है पर भाव-साम्य इतना अधिक है कि यह कहना पड़ता है कि भक्तोंके हृदय जैसे एक ही धातुके बने होते हैं। सूरदासजी कहते हैं—

हरि हौं सब पतितन को राव।
को करि सकै बराबरि मेरी, सो तौ मोहि बताव॥
ब्याध गीध अरु पतित पूतना, तिनमहँ बढ़ि जो और।
तिनमें अजामील गनिका पति, उनमें मैं सिरमौर॥
जहँ तहँ सुनियत यहै बड़ाई, मो समान नहीं आन।
अब रहे आजु कालिके राजा, मैं तिनमें सुलतान॥
अबलौ तो तुम बिरद भुलायो, भई न मोसों भेंट।
तजौ बिरद कै मोहि उधारो, सूर गही कसि फेंट॥

ठीक इसी भावमें श्रीपोद्दारजी कहते हैं—

प्रभु! तुम अपनो बिरद सँभारौ।
अधम-उधारन नाम धरायौ अब मत ताहि बिसारौ॥
मोसों अधिक अधम को जग महँ पापिन महँ सरदारौ।
ढूँढ़-ढूँढ़ जग अघ अति कीन्हें गनत न आवै पारौ॥
मोरे अघ कौं लिखत-लिखावत चित्रगुप्त पचि हारौ।
तऊ न आयौ अंत अघन कौ, छाड़ी कलम बिचारौ॥
अब लौं अधम अनेक उधारे, मो सों पल्लौ डारौ।
राखो लाज नाम अपने की, मत खोऔ पतियारौ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२९)

एक भक्त अपनेको पतितोंका राव कहता है तो दूसरा अपनेको पापियोंका सरदार कहता है। एक कहता है मैं पापियोंका सिरमौर हूँ तो दूसरा कहता है मेरे पापोंको लिखते-लिखते चित्रगुप्तने भी हारकर अपनी कलम छोड़ दी। दोनों ही प्रभुको अपने विरदकी स्मृति दिलाकर उद्धार करनेकी प्रार्थना करते हैं। थोड़े शब्दान्तरमें कैसा भाव-साम्य है। ऐसे एक नहीं अनेक पद हैं। सूरदासजी कहते हैं—

हरि हौं सब पतितनको नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी और नहीं कोउ लायक॥
बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अघ कीन्हें भरि भाँड़ो।
लीजै नाथ निबेर तुरतहि सूर पतितको टाँडो॥

श्रीपोद्दारजी कहते हैं—

नाथ! तुम तो पतित पावन, मैं पतित सबसे बड़ा।
कीजिये पावन मुझे मैं शरणमें हूँ आ पड़ा॥

× × × ×

अब नहीं ऐसा उचित प्रभु। कृपा मुझपर कीजिये।
पापका बन्धन छुड़ा नित शान्ति मुझको दीजिये॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३५)

एक अपनेको पतितोंका नायक कहता है तो दूसरा अपनेको सबसे बड़ा पतित कहकर दोनों ही प्रभुसे पावन बनानेकी प्रार्थना करते हैं। इतना ही नहीं सूरदासजी कहते हैं कि मेरे समान कुटिल, खल, कामी कोई नहीं है—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमक हरामी॥
भरि-भरि उदर विषय कौं धायो जैसे सूकर-ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरि बिमुखनकी निसि दिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो जग मो ते सब पतितनमें नामी।
सूर पतितको ठौर कहाँ है, तुम बिनु श्रीपति स्वामी॥

इसी तरह श्रीपोद्दारजी कहते हैं—

कैसैं बिनय सुनावौं, स्वामी!
छिपी न कुछ तुम सौं अंतर की, सब के अंतरजामी॥

कनक-कामिनी-रस-बस निसि-दिन सहज कुमारगगामी।
भूल्यौ परम अनुग्रह प्रभुकौ ऐसौं नौंन-हरामी॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ७४)

दूसरे स्थानपर कहते हैं—

नहीं नापाक, नालायक खलकमें मुझसा कोई और,
भरा लाखों गुनाहोंसे दिखाऊँ मुँह तुझे कैसे?
इबादत की नहीं तेरी, भूलकर भी कभी मैंने,
सताया तेरे बंदोंको, सामने आऊँ मैं कैसे?

× × × ×

रहमदिल, ऐ मेरे मालिक! करो अब परवरिश मेरी,
छोड़ परवरके दरको मैं जाऊँ अब गैर पै कैसे?

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०४)

यहाँ एक बात बहुत ध्यान देनेकी यह भी है कि क्या ऐसे उच्चकोटिके भक्त यथार्थमें कुटिल, खल, कामी, नालायक थे? इसका बड़ा सटीक उत्तर महात्मा गाँधीने एक बार दिया था। उनसे किसीने पूछा कि जब सूरदास, तुलसीदास जैसे संत अपनेको कुटिल, कामी आदि कहते हैं तो फिर हमलोग किस श्रेणीमें हैं? महात्मा गाँधीने उत्तर दिया कि उन संतोंकी पाप नापनेकी गज दूसरी थी और हम लोगोंकी दूसरी है। यहाँ तो सूरदासजी और पोद्दारजी दोनो ही अपनेको नमक हरामी कहनेका कारण भी बता देते हैं कि हम प्रभुको भूल गये।

इतना ही नहीं दोनों ही भगवत्साक्षात्कार प्राप्त संत कहते हैं कि प्रभो! हमसे आपका भजन नहीं होता। इसे दैन्यकी पराकाष्ठा कही जाय या और कुछ? सूरदासजीने लिखा—

हरि! तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कहा करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ॥

× × × ×

करौं जतन न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभुकी प्रबल माया, देति मोहि भुलाइ॥

श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

जनम सब बीत्यौ अघ कें काम।
फँस्यौ मोह-ममतामें निसि दिन भज्यौ न चित दै राम॥

लोगनि कह्यौ—'भजौ नित हरि कौं', धर्‌यौ साधु कौ बेष।
मन में रही कामिनी-कंचन की कामना बिसेष॥
जैसैं विषपूरित घट-मुख मिथ्या पय सोभा पावै।
तैसैहिं कुटिल-हृदय मम मुख पर सुचि हरिकथा सुहावै॥
पापी परम, अधम, अभिमानी, बंचक, मन कौ कारौ।
बिरुद बिचारि दयानिधि! अब मोहि निज चरननि में डारौ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ११२)

जब दोनों भक्त रामनामकी महिमा कहते हैं तब भी भाव-साम्य दर्शनीय है।

सूरदासजी कहते हैं—

बड़ी है रामनामकी ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहीं, करत कृपा कैं कोट॥
बैठत सबै समाज हरिजू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारसके परसैं मिटती लोह की खोट॥

श्रीपोद्दारजी कहते हैं—

भली है रामनामकी ओट।
जिन्ह लीन्हीं तिनके मस्तक तें पड़ी पाप की पोट॥
राम-नाम सुमिरन जिन्ह कीन्हो लगी न जम की चोट।
अन्तःकरन भयो अति निरमल, रही तनिक नहिं खोट॥
राम-नाम लीन्हें तें जर गइ माया-ममता-मोट।
राम-नाम तें मिले राम, जग रह गयो फोकट-फोट॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १००७)

जब हमें चेतावनी देते हैं तो दोनों संतोंकी समानता देखिये। दोनों ही हमलोगोंकी जीवनचर्या देखकर कहते हैं कि क्यों मानव जीवनको भजनमें न लगाकर व्यर्थ ही विषयोंमें फँसकर नष्ट कर रहे हो। इसके लिये बादमें कितना पश्चात्ताप करना पड़ेगा—

सूरदासजी कहते हैं—

रे मन मूरख, जनम गँवायौ।
कर अभिमान विषय-रस गोध्यौ स्याम सरन नहीं आयौ॥
यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ उड़ि गई रूई, हाथ कछू नहीं आयौ॥

कहा होत अबके पछिताये, पहिलै काम कमायौ।
कहत सूर भगवंत-भजनबिनु सिर धुनि-धुनि पछितायौ॥

श्रीपोद्दारजीने लिखा है—

अरे, तू क्यों अमूल्य तन खोवै?
क्यों अनित्य सुखरहित जगत्‌की ममता-निशिमें सोवै?
क्यों अघ-मूल भोग-सुख-कारण मानव-जन्म बिगोवै?
शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-हित क्यों अतृप्त हो रोवै?
श्रीहरिका अति सरस भजन कर क्यों न पाप-मल धोवै?
हरिपद-पंकजका मधुकर बन क्यों न धन्य तू होवै?

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०३७)

इसी प्रकार बाल लीलाओंका चित्रण करते हैं तब भी वर्णनमें बहुत समानता है। श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करनेवाला उनकी गो-चारण लीलाओंको छोड़ ही नहीं सकता। सूरदासजी कहते हैं—

चरावत बृन्दाबन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाए, खेलत हैं करि चैनु॥
कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ विषान, कोउ बेनु।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरि ब्रज-बालक-सेनु॥
त्रिबिध पवन जहँ बहत निसदिन, सुभग कुंज घन ऐनु।
सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु॥

श्रीपोद्दारजीने गाय चरानेकी लीलाका वर्णन करते हुए लिखा है—

कन्हैया गाय चरावन जात।
लाल काछिनी, कटि कल किंकिनि, पग नूपुर झननात॥
मोर-मुकुट सिर, कानन कुंडल, गल मुक्तामनि-माल।

× × × ×

धौरी, धूमरि, कारी, पीरी, सुंदर कबरी धेनु।
सखा सुबल-श्रीदाम-संग कटि राजत सींगा-बेनु॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २२२)

श्रीकृष्णकी मुरलीके मधुर स्वरने सभी भक्त कवियोंको आकर्षित किया है। कोई भक्त कवि शायद ही ऐसा हो जिसने मनमोहनकी मुरली वादनपर, उसकी स्वर-लहरीकी मनमोहक मादकतापर पद न रचे हों। सूरदासजी तो मुरली वादनके बहुतसे दृश्योंका चित्रण किया है।

एक चित्र है—

आज कहुँ मुरली स्याम बजाई।
तब तैं तरवर मोर सबै, पुर रही बदरिया छाई॥
गौवन अधर दसन तृन रहि गयौ, बछरा पियत न धाई॥
सिध, साधक ब्रह्मादिक, येऊ रहे सबै लौ लाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं धुनि सुनि उठि धाई॥

श्रीपोद्दारजीने मुरली-वादनके एक दृश्यका वर्णन किया है—

बजावत मुरली मीठी तान।
ठाढ़े बालरूप मन-मोहन मोहन मधु रस खान॥
कान उठाये सुनत चकित-मन हर्षित बत्स महान।
सिखि सुस्थिर सर्वांग सुनत सुर करत दिव्य रस पान॥
मुख-छबि मनहर सरल सुशोभित अरुन अधर हर मान।
नयन विशाल चमत्कारी अति, खींचत बरबस प्रान॥
कुंचित कच, सिर रतन-मुकुट, सिखि-पिच्छ, सुकुण्डल कान।
कर कंकन, कटि करधनि, कूजत नूपुर, कल कल गान॥
हेरत हरत सहज मुनि-जन-मन, करत प्रेम निज दान।
टूटत सकल बंध मायाके, मेटत मोह महान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २२७)

इसी तरह दोनोंने ही हाथमें मक्खन लिये हुए श्रीकृष्णके दर्शन किये। सूरदासजीने देखा—

शोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरन चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए॥

श्रीपोद्दारजीने भी देखा—

कर नवनीत लियें नटनागर।
मधुर सरल सिसुभाव सखनि सँग निरतत निरवधि सर्वसुखाकर॥

कई पदोंमें तो इतना साम्य है कि पदमेंसे सूरदासजीका नाम हटा दिया जाय तो यह भी पता नहीं लगता है कि यह पद सूरदासजीका है या श्रीपोद्दारजीका; पर इतना होते हुए भी बहुतसे वर्णनोंमें पद-रत्नाकर और सूरसागरमें पर्याप्त अन्तर भी है। अनुभूति खण्डमें पोद्दारजीके जैसे वर्णन हैं वैसे सूरसागरमें दर्शन नहीं होते। बाल-लीलाओंका जितना विशद वर्णन सूर-सागरमें है वैसा पद-रत्नाकरमें नहीं मिलता। जहाँ सूरसागरमें श्रीकृष्णके स्वरूप सौन्दर्यका अधिक वर्णन है वहाँ पद-

रत्नाकरमें श्रीराधाकृष्णके संवादोंका, उनके परस्परके भावोंका, प्रेम वैचित्त्यका अधिक वर्णन है। भगवान्‌के शिव, दुर्गा आदि विविध स्वरूपोंका जितना वर्णन पद-रत्नाकरमें है उतना सूरसागरमें नहीं मिलता। ये भिन्नताएँ होते हुए भी कोई शोधकर्ता सूरसागर और पद-रत्नाकरका अनुसंधानपूर्वक गम्भीर अध्ययन करे तो दोनोंमें अनूठा साम्य प्रतीत होता है। इसीलिये केवल पद-रत्नाकर ही श्रीपोद्दारजीको कालजयी रचनाकारोंकी अग्रिम पंक्तिमें स्थापित करनेके लिये पर्याप्त सक्षम है। कहा भी गया है—

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धा कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

----×----

पद-रत्नाकर और व्रज-रसके अन्य कवि

सूरदासजीके अतिरिक्त अन्य अष्टछापके तथा अन्य व्रजरसके रसिक कवियोंकी पद रचना और श्रीपोद्दारजीके पदोंमें भी भाव-साम्यताके दर्शन होते हैं। इनकी कुछ रचनाएँ पढ़नेसे भी यही लगता है कि भक्तोंकी साधना पद्धति भले ही कुछ भिन्न-भिन्न हो पर भावों और हृदयके उद्‌गारोंमें साम्यता रहती है। अधिक विस्तार न करके यहाँ संक्षेपमें कुछ दिग्दर्शन किया जा सकता है।

प्रेमका पंथ सबसे पृथक ही है। व्रजरसके आचार्य श्रीहितहरिवंशजी कहते हैं—

प्रीति न काहु कि कानि बिचारै।
मारग अपमारग बिथकित मन, को अनुसरत निवारै॥
हितहरिबंसहिं लग सारँग ज्यों, सलभ सरीरहिं जारै।
नाइक, निपुन नवल मोहन बिनु, कौन अपनपौ हारै॥

इधर पद-रत्नाकरमें श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

सबहिं सौं पृथक प्रेमपथ पावन।
सूधौ, सरल, सरस, रस-बरसी स्यामहि सपदि मिलावन॥
बिषय-जगत सौं होय आँधरौ, प्रियतम तन जो धावन।
प्रियतम-सुख सरबस, जीवन निज, सुख-सुधि सहज भुलावन॥
बानी-मन तें परै महारस महाभाव मन-भावन।

प्रेम-सिंधु सोई सहसा रसराज रसिक प्रगटावन॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ६६३)

यशोदाजीके भाग्यकी सभी व्रज-रसके कवियोंने सराहना की है। जिनके दर्शनके लिये सुर-मुनि ही नहीं ब्रह्मा आदि भी तरसते हैं। वे ही श्यामसुन्दर माता यशोदाकी गोद चढ़नेके लिये मचलते रहे हैं। अष्टछापके प्रसिद्ध कवि श्रीपरमानन्ददासजी गाते हैं—

जसौदा तेरे भागकी कही न जाय।
जो मूरति ब्रह्मादिक दुरलभ सो प्रगटे हैं आय॥
सिव नारद सनकादि महामुनि मिलिबे करत उपाय।
ते नँदलाल धूरि-धूसर-बपु रहत गोद लिपटाय॥
रतन जड़ित पौढ़ाय पालनै बदन देखि मुसुकाइ।
झूलौ मेरे लाल बलिहारी परमानन्द जस गाइ॥

ऐसा ही दृश्य श्रीपोद्दारजीने भी देखा। वे लिखते हैं—

मचलि रहे ता दिन मनमोहन, मैयाकी चढ़िबै को गोद।
सुनी नायँ मैया कछु तिनकी, लगी रही गृह-कार्य समोद॥

× × × ×

आइ गये नारद बाबा तेहि छिन तहँ लीला देखि अनूप।
चकित, थकित ह्वै डूबि गये आनंदोदधि लखि हरि कौ रूप॥
बोले, 'मैया! तेरे कैसे पुन्य-पुंज तप तीव्र महान।
तेरी गोद चढ़न कों मचले, लोट रहे कीचड़ भगवान॥
विधि-हर-सुरपति बिबिध जतन करि पावत नायँ तनिक परसाद।
ललचाते तेरे प्रसाद कों पूर्न ब्रह्म सो तजि मरजाद॥
या ब्रजभूमि, धूलि-कण याके दिब्य पुन्यमय अतिसय धन्य।
स्वयं सच्चिदानंद सन रहे जिनमें ह्वै सुख-मत्त अनन्य'॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २१०)

प्रिया-प्रियतमको झूलेमें झूलते हुए दृश्योंके वर्णनमें भी व्रज-रसके कवियोंमें बहुत समानता है। श्रीगदाधरजी भट्टने एक दृश्यका वर्णन किया—

झूलत नागरि नागर लाल।
मंद मंद सब सखी झुलावति गावति गीत रसाल॥
फरहराति पट पीत नीलके अंचल चंचल चाल।

मनहुँ परसपर उमँगि ध्यान छबि, प्रगट भई तिहि काल॥
सिलसिलात अति प्रिया सीस तें, लटकति बेनी नाल।
जनु पिय मुकुट बरहि भ्रम बसतहँ, ब्याली बिकल बिहाल॥
मल्ली माल प्रियाकी उरझी, पिय तुलसी दल माल।
जनु सुरसरि रबितनया मिलिकै, सोभित स्त्रेनि मराल॥
स्यामल गौर परसपर प्रति छबि, सोभा बिसद बिसाल।
निरखि गदाधर रसिक कुँवरि मन, पर्‌यो सुरस जंजाल॥

पोद्दारजीने भी झूलन लीलाके बहुत दृश्योंका वर्णन किया है। एक दृश्यका चित्रण करते हुए लिखते हैं—

हिंडोरें झूलत स्यामा-स्याम।
नव नट-नागर, नवल नागरी, सुंदर सुषमा-धाम॥
सावन मास घटा घन छाई, रिमझिम बरसत मेह।
दामिनि दमकत, चमकत गोरी, बढ़त नित्य नव नेह॥
कल्पद्रुम-तल सीतल छाया रतन-हिंडोरा सोहै।
झूलत प्रीतम-प्रिया ताहि पर चित्त परस्पर मोहै॥
नील-हेम तनु पीत-नील पट सोहत सरस सृङ्गार।
चंचल मुकुट, सुचारु चंद्रिका, गल मुक्तामनि-हार॥
सखि ललितादिक देत झकोरे, मिलत अंग-प्रति-अंग।
गावत मेघ-मलार मधुर सुर, बाजत ढोल-मृदंग॥
हँसत-हँसावत रस बरसावत सखी-सहचरी-बृंद।
उमग्यौ आनँद-सिन्धु, मगन भए दोऊ आनँद-कंद॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २७९)

श्रीहरिरामजी व्यास व्रजभावके सुप्रसिद्ध कवि हुए हैं। वे श्रीराधानामकी महिमाका बखान करते हुए लिखते हैं—

परमधन राधे नाम अधार।
जाहि स्याम मुरलीमें टेरत, सुमिरत बारंबार॥
जंत्र-मंत्र और बेद तंत्रमें सबै तारकौ तार।
श्रीसुक प्रगट कियो नहिं यातैं जानि सारको सार॥
कोटिन रूप धरे नँद-नंदन, तऊ न पायौ पार।
ब्यासदास अब प्रगट बखानत, डारि भारमें भार॥

इधर श्रीपोद्दारजीने भी राधानामकी महिमापर अनेक पद लिखे हैं। उनका एक पद है—

भजौ नित राधानाम उदार।
जाहि श्याम नित रटत रहत हिय भरि उल्लास अपार॥
चौदह भुवन-लोकत्रय-स्वामी अखिल जगत-आधार।
सोइ नित जाके हाथ बिकानो, करत रहत मनुहार॥
जाके दरस हेतु मुनि तरसत जानि सार-कौ-सार।
सुमिरौ सोइ राधा-पद-पंकज निसि-दिन बारंबार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०१५)

श्रीकृष्णकी पवित्र मनोरम रासलीलाका वर्णन भी व्रजके रसिक भक्तोंने प्राय: किया है। लीलाके दर्शनोंमें भिन्नता है पर भाव-साम्यता यहाँ भी दर्शनीय है। श्रीहरिप्रियाजीने रासलीलाका वर्णन करते हुए लिखा है—

नचत नवल नागर रहसि रासरंगे।
सुभग वन पुलिन थल कल्पतरु तल विमल,
मंजु मंडल कमल दल अभंगे।
रुनुनु नूपुर दमकि झमकि हंसक झुनुनु,
कुनुनु किंकिनी कलित कटि सुधंगे।
चरन की धरन उच्चरन सप्तक सुरन,
हरन मनन करन उर उमंगे॥

× × × ×

रीझि रस भीजि रिझ दो बार दोउ रसिकवर,
परस्पर पी सुधाधर सभंगे।
मत्त अनुराग अंगे अनंगे रमत,
रंग श्रीहरिप्रिया नित्य संगे॥

श्रीपोद्दारजीने पूरी रासपंञ्चाध्यायीका पद्यानुवाद तो किया ही है इसके अतिरिक्त और भी रासलीलाके बहुतसे पद लिखे हैं। एक बड़ा ही मधुरपद है—

रुचिर तपन-तनया-तट, निभृत-नव-निकुंज-निकट,
निरतत नव नागर नट, लसत पीत पट ललाम।
सोभा निरुपाधि सजत, कोटि-कोटि काम लजत,
मुरलि अधर मधुर बजत, भजत संत नित निकाम॥

मृग-मद रुचि तिलक भाल, चंचल लोचन बिसाल,
कुंचित कच कृष्ण जाल, भ्रुकुटि कुटिल कला-धाम।
करि-बर-मद-हरनि चाल, कटि किंकिनि-रव रसाल,
सुरभित बन-कुसुम-माल, रत्नहार कंठधाम॥
कुंडल मनि-रत्न-चमक, सुचि कपोल गोल दमक,
अंग-अंग सुरभि-गमक, रमा रमत वक्षधाम।
निपट सुखद खटपट-रति, लपट-झपट नटखट गति,
आकरषत तन-मन-मति, इंद्रिय झट बिना दाम॥
मृदु मधु मुसुकान बिमल, मुनि-जन-मन हरत सबल,
मिटत दुःख-दैन्य सकल, परम रम्य सुधा-धाम।
रसमय रसराज सतत, रस-बरषा बरसत नित,
नेह-सिंधु उमगि अमित, बहे अन्य रस तमाम।
बाढ्‌यौ अति प्रेम-भाव, सब-कें मन भर्‌यौ चाव,
भाव भयौ महाभाव, भूले सब नाम-धाम॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० २६८)

मीराबाईके पदोंमें और श्रीपोद्दारजीके पदोंमें भी बहुतसे पद एक ही भावके प्रतीत होते हैं। मीराबाईने गाया है—

हरि बिन ना सरै री माई।
मेरा प्राण निकस्या जात हरी बिन ना सरै माई॥

× × × ×

बन बन ढूँढ़त मैं फिरी माई सुधि नहिं पाई।
एक बेर दरसण दीजे सब कसर मिटि जाई॥
पात ज्यों पीली पड़ी अरु बिपत तन छाई।
दासि मीरा लाल गिरधर, मिलियाँ सुख छाई॥

इधर श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

स्याम बिनु छिनहूँ नाहिं सरै।
पल-पल जुग समान बीतत, नहिं अधम प्रान निसरै॥
बोलनि-चलनि, आवनी-धावनि की सुधि मोद भरै।
नव निकुंज की मिलनि मनोहर कबहूँ नहिं बिसरै॥
का कौं कहि कैसे समझावौं, हिय बिच अगिनि जरै।

बिनु अनुभव कैसैं पतियावै, कैसैं समुझि परै॥
कहिबे में कछु सार न दीखत, उलटौ नाम धरै।
को जग ऐसौ है, जासौं यह जिय की जरनि जरै॥
जौ कहुँ स्याम सुधा-जल आकर मो पर बरसि परै।
तब ही बुझै अनल यह जड़ सौं, निर्झर अमृत झरै॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ३०१)

मीराबाईके पदोंका अनुशीलन करनेसे ऐसा लगता है कि उनमें विरह वर्णन अधिक है पर श्रीपोद्दारजीकी तरह श्रीराधा-माधवकी मनोहर छवि एवं मधुर लीलायें निहारने और उनमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, ऐसा वर्णन नहीं मिलता।

श्रीपोद्दारजीके पदोंमें एक तरफ महासागर जैसी गहराई है तो दूसरी ओर हिमालय जैसी ऊँचाई भी है। उनके महत्वका आकलन तभी संभव हो सकेगा जब हिन्दी साहित्यके विद्वानों, समालोचकों, प्राध्यापकों एवं शोधकर्ताओंका ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा।

----×----

(२५)
पद-रत्नाकर और तुलसी-काव्य

महाकवि तुलसीका लोकमंगलकारी राम काव्य आज भी जन-जनको प्रेरणा दे रहा है। उनका 'रामचरितमानस' तो आज ४०० वर्षोंके बाद भी गाँव-गाँव, घर-घरमें आदरकी वस्तु बना हुआ है। यद्यपि इसके प्रचारमें भी श्रीपोद्दारजीकी देन अतुलनीय है पर केवल मानसकी रचनामें ही मर्यादा पुरुषोत्तम रामकी लीलाओंका इतना सरस वर्णन है जिसके कारण रामचरितमानस लोगोंका कंठहार बन गया है। यद्यपि तुलसीदासजीने अपने आराध्यकी लोकपावनीगाथा स्वान्तः सुखाय अपनी अर्चनाके रूपमें ही लिपिबद्ध की पर वह परम लोक-कल्याणकारी सिद्ध हुई। वैसे ही श्रीपोद्दारजीने भी अपने आराध्य श्रीराधा-कृष्ण युगलकी लीलायें काव्य रचनाकी दृष्टिसे नहीं वरन उनका यह प्रयास भी अपने अनुभूत भावोंका स्फुरण मात्र ही है। इसीलिये एक सिद्ध संतने तो यहाँ तक उद्‌धोषणा की है कि भविष्यमें एक समय ऐसा आयेगा जब श्रीपोद्दारजीके पद भी 'रामचरितमानस' की तरह ही लोकमंगलकारी होनेसे घर-घरमें प्रचलित होंगे। इसमें एक विशेष कारण यह भी है कि तुलसीदासजीने तो मर्यादा पुरुषोत्तम रामकी लीलाओंका गायन किया पर श्रीपोद्दारजीने लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलाओंको मर्यादामें बाँधकर लोक कल्याणको प्रमुखता देकर गाया। भगवान्‌ने जैसी विविध विचित्र उन्मुक्त लीलायें श्रीकृष्ण रूपमें की वैसी किसी रूपमें नहीं की और उनकी लीलाओंमें शृंगार रसका पुट भी प्रच्छन्न रूपमें है। पर लीलावतारी भगवानकी उन शृंगार रसकी लीलाओंका भी चित्रण श्रीपोद्दारजीने मर्यादित रूपमें ही किया। अपने जीवनके अन्तिम समयमें जो वसीयतनामा श्रीपोद्दारजीने लिखा उसमें यह संकेत भी है कि उनके द्वारा कोई 'विशेष कार्य' करानेकी दैवी योजना पहलेसे ही थी। वह 'विशेष कार्य' क्या था— यह तो वे स्वयं ही बता सकते थे पर उनके काव्यका अनुशीलन करनेसे यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंको एक लोक कल्याणकारी नया परिवेश दिया है।

इसके पूर्व मधुर भावकी उपासनाके नामपर व्यक्तिगत जीवनमें तथा

समाजमें कुछ अनुचित बातें प्रवेश हुई। कुछ भक्त कवियोंको छोड़कर शेष कवि जिन्होंने श्रीराधा-कृष्णको अपने काव्यका विषय बनाया, उनके वर्णनोंमें एक आध्यात्मपरक सैद्धान्तिक मापदण्ड न रहनेके कारण बहुत कुछ सामाजिक विकृतियोंका समावेश हो गया। हिन्दी साहित्यमें ऐसे अनगिनत काव्य हैं जिसमें श्रीराधा-कृष्णका लौकिक नायक-नायिकाकी तरह शृंगार-वर्णन है। श्रीपोद्दारजीने अपने काव्यमें श्रीराधा-कृष्णके परम उज्ज्वलतम प्रेमका दर्शन कराया, जिसकी हिन्दी-वाङ्मयमें अत्यन्त आवश्यकता थी। इस उज्ज्वल रूपके कारण ही व्रजके एक रसिक विद्वान्ने कहा कि हमारी श्रीराधाका स्वरूप तो ऐसा हो गया था कि उसे शिक्षित वर्गके समक्ष रखनेमें कई बार संकोचका अनुभव होता था, पर श्रीपोद्दारजीने श्रीराधाका ऐसा त्यागमय दिव्य स्वरूप रखा कि यह स्वदेशमें किसीके समक्ष रखनेकी बात ही क्या, विदेशमें भी किसीके समक्ष रखनेमें गौरवका बोध होता है। हिन्दीके उद्‌भट विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि श्रीपोद्दारजीके काव्यने एक नयी दिशा और दृष्टिकोण दिया है जो युगों-युगोंतक लेखकों और कवियोंका मार्गदर्शन करता रहेगा। संभव है कि यही 'विशेष कार्य' दैवी योजनाके अन्तर्गत हो।

इसके अतिरिक्त तुलसीकाव्य और श्रीपोद्दारजीके काव्यमें बहुत समानताएँ भी परिलक्षित होती हैं। राम-कथाका आधार रखते हुए भी श्रीतुलसीदासजीने जीवनके व्यावहारिक पक्षको भी विशेष प्रधानता दी है। उसी तरह पद-रत्नाकरके 'व्यवहार और परमार्थ' खण्डमें श्रीपोद्दारजीने केवल दैनिक जीवनके व्यवहार पक्षको उजागर ही नहीं किया है बल्कि सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रमें कार्यरत लोगोंका भी उद्‌बोधन, मार्गदर्शन किया है।

दैन्य भावना तो दोनों ही कवियोंमें पराकाष्ठाकी सीमापर है। श्रीतुलसीदासजी विनय-पत्रिकामें लिखते हैं—

कीजै मोको जमजातनामई।
राम! तुमसे सुचि सुहृद साहिबहिं, मैं सठ पीठि दई॥ १॥
गरभबास दस मास पालि पितु-मात-रूप हित कीन्हों।
जड़हिं बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों॥ २॥
कपट करौं अंतरजामिहुँ सो, अघ ब्यापकहिं दुरावौं।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं॥ ३॥
उदर भरौं किंकर कहाइ बेच्यौ विषयनि हाथ हियौ है।
मोसे बंचकको कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है॥ ४॥

पल-पलके उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
बिंध्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पीके॥ ५॥
स्वामीकी सेवक-हितता सब, कछु निज साइँ-द्रोहाई।
मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरेहि दिसि गरुआई॥ ६॥
एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आये, अरु करिहैं।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं॥ ७॥

श्रीपोद्दारजी लिखते हैं—

को अपराधी मो सम आन?
प्रभु-बंचक, पर-बंचक, पुनि निज-बंचक, बेईमान॥
भटक रह्यौ भोगनि महँ भूल्यौ सब भविष्य कौ भान।
अघमय नित्य कुकर्मपरायन, तजि मानवता-मान॥
मलिन बिचार, कर्म सब गंदे, ममता-मद-अभिमान।
काम-लोभ कौ चेरौ, निसि-दिन करौं पाप हित जान॥
नहीं धर्म कौ भय कछु मो मन, नहिं करतब कौ ग्यान।
बिसरि गए सब-दरसी उर में बसे सदा भगवान॥
जपूँ न नाम तुम्हारौ कबहूँ, करूँ न कबहूँ ध्यान।
जूता लगैं, तदपि मैं जाऊँ फिरि-फिरि तहँ जिमि स्वान॥
प्रभु मो नीच पतित पाँवर कौं करौ कृपा कौ दान।
जेहि-केहि बिधि राखौ चरननि महँ, निपट निराश्रय जान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १०९)

एक कहता है कि मुझे यमकी यातनामें डाल दीजिये तो दूसरा कहता है मेरे समान अपराधी कोई नहीं है। मेरा जीवन पापपूर्ण है जो नित्य कुकर्मोंमें ही लगा रहता है। अपने दैन्यका पूरा चित्रण करके दोनों ही भक्त प्रभुको आश्रय प्रदान करनेकी प्रार्थना करते हैं।

इसी तरह दोनोंकी प्रभु-वन्दनामें भी बहुत समानता है। तुलसीदासजी विनय-पत्रिकामें कहते हैं—

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक! धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे॥ १॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीति केवट भेंट्यो॥ २॥

जेहि कर-कमल कृपालु गीधकहँ, पिंड देइ निजधाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो॥ ३॥
आयो सरन सभीत विभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हों॥ ४॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी, मेटति पाप, ताप, माया।
निसि-बासर तेहि कर सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया॥ ५॥

श्रीपोद्दारजी पद-रत्नाकरमें लिखते हैं—

बंदौ हरि-पद-पंकज पावन।
विधि-हर-सुर-रिषि-मुनिजन-बंदित, सुमिरत सब अघ ओघ-नसावन॥
जे पद-पद्म-पराग परसि पुनि गोतम-तिय भइ भावनि भामिनि।
जे पद-पद्म-पराग परसि सुरसरि-जल अघ धोवत दिन-जामिनि॥
जे पद-पद्म भूमि-लक्ष्मी उर-मंदिर सुचि नित रहत बिराजित।
जे पद-पद्म प्रेम-रस-पूरित ब्रज-जुवतिन-उरोज रह राजित॥
ते पद-पद्म भक्त-संतनि के हियँ अति सुख सौं बसत निरंतर।
ते पद-पद्म बसहु लोलुप के धन-जिमि नित मेरे उर अंतर॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ५०)

भगवन्नामकी महिमा गानेमें तो तुलसीदासजीने कमाल कर दिया। प्रकारान्तरसे उन्होंने नामको भगवान्‌से भी बढ़कर बता दिया—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

इतना ही नहीं उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि कलियुगमें और कोई साधन पूर्णरूपसे संभव ही नहीं है। इस समय तो केवल नामका आश्रय ही सब कुछ देनेमें समर्थ है—

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
रामनाम कलि अभिमद दाता। हित परलोक लोक पितु माता।
नहिं कलि करम न भगति बिबेकु। राम नाम अवलम्बन एकु॥

ऐसा लगता है कि तुलसीदासजीके बाद श्रीपोद्दारजीने ही नामकी इतनी महिमा लिखी है। विस्तारभयसे यहाँ केवल एक ही पद दिया जा रहा है जिसमें उन्होंने ठीक उसी भाषामें कहा है कि नामके समान दूसरा साधन है ही नहीं और रामसे भी रामका नाम बड़ा है—

साधन नाम-सम नहिं आन।
जपत सिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान॥
नाम के बल मिटत भीषन असुभ भाग्य-बिधान।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान॥
नाम टेरत टरत दारुन बिपति, सोक महान।
आर्त करि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान॥
नाम के परताप तें जल पर तरे पाषान।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान॥
नाम-बल संभव सकल जे कछु असंभव जान।
धन्य ते नर, रहत जिनके नाम-रट की बान॥
पाप-पुंज प्रजारिबे-हित प्रबल पावक-खान।
होत छिन महँ छार, निकसत नाम जान-अजान॥

× × × ×

नाम की महिमा अमित, को सकै करि गुन-गान।
राम तें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्रीभगवान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १००६)

यद्यपि श्रीकृष्णकी लीलाओंका जितना वर्णन श्रीपोद्दारजीने किया है उतना श्रीरामकी लीलाओंका नहीं किया है पर श्रीरामकी लीलाओंके भी बहुतसे पद उन्होंने लिखे हैं जो श्रीतुलसीदासजीके पदोंके समान ही हैं। वनसे लौटनेपर गीतावलीमें श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

रन जीति राम राउ आए।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु, अवध आनंद-बधाए॥ १॥
अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुबास बसाए।
धरनि-धेनु, महिदेव-साधु, सबके सब सोच नसाए॥ २॥
दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन-पियूष पिआए।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए॥ ३॥
मिलि गुर, बंधु, मातु, जन, परिजन, भए सकल मन भाए।
दरस-हरस दसचारि बरसके दुख पलमें बिसराए॥ ४॥

× × × ×

श्रीपोद्दारजीने भी वनसे लौटनेका वर्णन लिखा है। वह भी कितना समान है यह देखनेके लायक है—

रिपु रन जीति राम घर आए।

लषन-सीय-कपि-रीछ-सहित प्रभु कुसल, अवध आनंद बधाए॥
नगर छयो आनंद-कुलाहल, हाटबाट-घर सबनि सजाए।
लगे बाजने बजन चहूँ दिसि, मुदित नारि-नर देखन धाए॥
उतरि बिमान भए सब ठाढ़े, अमित रूप निज राम बनाए।
जथाजोग मिलि राम सबनि तें सबके मन अति मोद बढ़ाए॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८४६)

श्रीपोद्दारजी द्वारा रचित विपुल, विशद गद्य साहित्यकी तो यहाँ कोई चर्चा ही नहीं हो रही है पर उनके केवल पद-रत्नाकरकी पंक्तियोंकी संख्या देखी जाय तो तुलसीदासजीके तीन प्रमुख ग्रन्थ रामचरितमानस, विनय-पत्रिका तथा गीतावलीकी पंक्तियोंसे भी अधिक है। ऐसा लगता है कि अभीतक साहित्यिक मनीषियोंकी दृष्टिमें श्रीपोद्दारजीके साहित्यिक व्यक्तित्वका हिमालय सदृश विराट स्वरूप पूर्णरूपसे उद्‌घाटित होना शेष है।

----×----

(२६)

पद-रत्नाकर (चतुर्थ संस्करण) के बाद अप्रकाशित पद

जो पद चतुर्थ संस्करणमें प्रकाशित नहीं हो सके वे नीचे दिये जा रहे हैं। अभी और भी पद हो सकते हैं। जिन पदोंका रचनाकाल मिल सका वह कोष्ठकमें दिया गया है।

वन्दना एवं प्रार्थना

(१)

पञ्चदेवोंको नमस्कार

बंदौ गणपतिके चरण, शिव-भवानि पद-धूल।
नारायण-रवि पद-कमल, लोकोत्तर सुख-मूल॥

(जनवरी १९६०)

(२)

विनती तुमसे है यही, हे मेरे भगवान।
कभी किसीका भी नहीं, हो मुझसे अपमान॥
सबमें देखूँ तुम्हीको, छोड़ सभी अभिमान।
सबकी सेवा-हित करूँ, सबको दूँ सम्मान॥

श्रीराधा-माधव लीला-माधुरी

(३)

सो रही थी मैं अकेली कक्षमें। लगा कोई रहा चिपटा वक्षमें॥
अति सुकोमल सरस उसका स्पर्श है। उठ रहा उरमें अनोखा हर्ष है॥
विविध क्रीडा रसमयी करने लगा। मोद देता, मोदमें भरने लगा॥
मिटा सब व्यवधान अंतर भर गया। हुआ सब विस्मृत, मधुर रस भर गया॥
अङ्ग सारे मिले उसके अङ्गमें। इन्द्रियाँ सब मिली इन्द्रिय सङ्गमें॥
मन अमन हो रूप रसका बन गया। प्रेमकी निर्मल सुधामें सन गया॥
चेत आया, वृत्ति जब बाहर हुई। लगी मैं यह सोचने विस्मित हुई॥
स्वप्न था तो स्वप्न यह टूटा न क्यों? मिलन दोनोंका अभी छूटा न क्यों?

क्यों जकड़ रक्खा मुझे उसने अभी? हो रही क्यों चेतना प्रमुदित सभी?
स्वप्न कल्पित है नहीं, प्रत्यक्ष हैं। लगे मेरे प्राणप्रियतम वक्ष हैं॥
मानती थी मैं, यहाँ वे हैं नहीं। भूल थी मेरी सरासर यह सही॥
प्राण प्रिय रहते सदा मेरे यहीं। छोड़कर मुझको न जाते क्षण कहीं॥
आज प्रियने यह मुझे दिखला दिया। नित्यका भ्रम आज पूर्ण मिटा दिया॥
भुजाभर मैंने गले लिपटा लिया। नित्य पाये हुए प्रियको पा लिया॥
एक थे नित, भूलसे पर भेद था। इसीसे चिरकालसे अति खेद था॥
कर कृपा प्रियने उसे अब हर लिया। मिल मिलाकर एक रस अब कर लिया॥

(४)

निभृत निकुंज नवीन मध्य सुरभित मृदु कुसुम सेज आसीन।
प्रियतमके भुजपाश बँधी मुग्धा श्रीराधा लज्जा लीन॥
अभिनव सुखद समागममें करने मुख शशि-दर्शन-चुम्बन।
अति उत्सुक प्रिय लगे हटाने निज कर प्यारी अवगुंठन॥
लज्जावश 'ना' 'ना' करती प्यारी मन छाया मोद महान।
मने कर रही चाह रही पर मनमें मधुर अधर रस पान॥
शीघ्र खोल घूँघट प्रियतम मम करे निरङ्कुश मनमानी।
टूटें सभी लाज के बंधन व्यवधानों की हो हानी॥
रहे न भेद परस्पर कोई, रहे न कोई निज-पर-भाव।
स्मृति न रहे निज इन्द्रिय सुखकी बढ़े परस्पर सुखका चाव॥
बहे अनन्त प्रेम रस धारा, डूबे सभी जगत के रंग।
प्रियतम मिलन परम सुखमय अति मुदित उदित हो दिव्य अनंग॥
प्यारी यों कर रही मनोरथ उधर दिया घूँघट पट खोल।
चुम्बन कर कपोल वे मधु अधरामृत पीने लगे अतोल॥
दोनों ही दोनों की पूरी करने लगे हृदयकी साध।
तृप्ति न हो पाती बहती अति मधुर प्रेम रस धार अबाध॥
देख रही प्रिय सखी दूरसे भरती मन आनन्द अपार।
देखा करूँ यही रस लीला राधा-माधव ललित बिहार॥

(५)

सोवत रही सखी! हौं सुखभर।

देख्यौ सुपन सिरहने बैठे मधु मुसुकान भरे मुख प्रियवर॥
बिछुरे चिकुर सँवारन लागे प्रिय निज कोमल रुचिर कमल कर।
नक बेसर कर परस लगै पौंछन मुख मम मृदु निज पीताम्बर॥
अति धीरे हटाय तकिया, राख्यो सिर मम निज बाहु मृदुल पर।
सोय रहे करिकैं भुजबंधन हिय सौं हिय मिलाय सुरसिकवर॥
मुख लगाय मम रहे कपोलनि भरि अंकवार धर्‌यो पग पगपर।
परसत अंग सुगंधित सुखमय उपज्यौ रस सुचि मधुर मनोहर॥
करन लगे रसमय रसलीला, पान मत्त रस मधुर सुधा धर।
जागि उठी, देखे मोहन मम फेरि रहे कर कमल बदन पर॥

(मई, १९६०)

(६)

सखी कहती है—

बनौ पिय पहले परसन जोग।
गिरि-वन वास करौ साधौ अति कठिन तपस्या योग॥
पावौ सिखा धूप तप कौ, करि बदरी आश्रम बास।
करौ भवानी कौ आराधन प्रिया-मिलनकी आस॥
समुद बिमंद ह्वै करौ दान तुम रमनी-रत्न हजार।
राधा-अंग-परसन कौ तब कछु मिलै तुमहिं अधिकार॥

(७)

भगवान् कहते हैं—

सुनि कै बिंग बचन प्रिय सखि के, हँसि बोले घनस्याम।
हृदय पवित्र बदरिका बन राधा-बिधु-बदन ललाम॥
कुच-जुग उन्नत अति कठोर गिरि, सिखाधूम फटकार।
पद पल्लव-सेवन भवानि-आराधन सब सुखसार॥
रूपवती रमनी सहस्त्र कौ नेह करौ बलिदान।
रोम-रोम प्रति राधा के यह विमल नारि-धन-दान॥
बन-गिरि-वास तपस्या या विधि सब राधाके पास।
परसन कौ अधिकार मिलै मोहि सखि चरननि को दास॥

(८)

देखा दृश्य अनोखा राधे! आयी तुम एकान्त निकुंज।
आते ही तम मिटा छा गया चारों दिक् प्रकाशका पुंज॥
देख तुम्हारी माधुरी मूरति, बरबस मन मोहन मुसकान।
उठा हृदयमें मिलनेच्छाका, मिलने पर भी मधु तूफान॥
मिली तुरत मन भावनि तुम, मन वांछित करती रस का दान।
बढ़ती अधिक-अधिक तृष्णा, मैं ज्यों-ज्यों करता रस का पान॥
मेरे सदृश, वरं उससे भी बढ़कर बढ़ी तुम्हारे चित्त।
रस लालसा, लगे फिर दोनों करते आस्वादन रसवित्त॥

(९)

श्रीराधा-चन्द्रावलि प्रेमालाप

राधा-चन्द्रावलि दोनों ही, स्नेह-सुधा-रस बोरी।
थीं नंद-नन्द-इन्दुकी प्यारी, वे दो सौम्य चकोरी॥
कुछ ऐसा संयोग हुआ, वे अपने चिर प्रियतमसे।
साथ-साथ हो गयी, वियोगिन, कुटिल कालके क्रमसे॥
बन-बनमें बनबासीको वे, खोज-खोजकर हारीं।
तब दोनों आ मिलीं परस्पर, दैव-योगकी मारीं॥
दोके चार नयन होते ही, मुरली अधर लगाये।
एक-दूसरीके नयनोंमें, श्याम ससंभ्रम पाये॥
रहित-निमेष-दृष्टिसे दोनों, ध्यानावस्थित होकर।
प्रिय-दर्शन-सुख लगीं लूटने, तन-मनकी सुधि खोकर॥
राधाके इतनेमें दोनों, नयन सजल हो आये।
इस प्रकार चन्द्रावलिने तब, वचन विनीत सुनाये॥
अरी बीर! नयनोंको अपने, नेक सँभाले तो रहना।
बसते हैं उनमें हृदयेश्वर, सजनी सच मानो कहना॥
उनका पीताम्बर मत होवे, जलसे कहीं सजल प्यारी।
स्वर-लहरी अवरुद्ध न हो वह, मधुर मंजु मुरलीवारी॥
अनुक्षण रहें दृष्टिमें मेरे, श्याम सलौने मनमाये।
सदा कृतज्ञ रहूँगी प्यारी, इसी भाँति यदि दिखलाये॥

सच कहती हो सजनी तुम, या मैं ही स्वप्न रही हूँ देख?
या उद्भ्रांत प्रीतिके वश हो, दोनों पगली हैं सविशेष?
मैं अबतक तेरे नयनोंमें, लखती थी प्रियको अनिमेष।
तुझे न बतलानेका कारण, कुछ-कुछ था मेरा विद्वेष॥
भय था मुझे कि मैं यदि तुझसे, कुछ भी कह दूँगी स्पष्ट।
मूँद प्राण-धनको तू लेगी, देगा जो कि विरहका कष्ट॥
दोनोंने चितचोर श्यामका, छल होना अनुमान किया।
निकल न जावें इसीलिये बस, निज नयनोंको मूँद लिया॥
अनायास आ गये कृष्ण भी, मन्द-मन्द करते मुसक्यान।
कहने लगे, ''अहो ब्रजवाले! बहुत हो चुका जप-तप-ध्यान॥''

(१०)

स्यामको विरह बिषम दावानल।
जारत अंग-अंग पल-पल मम, परत न छिन एकहु मनमें कल॥
निसिदिन रहत बदन निरखन कौं, आतुर अति मन त्याग सुधीरज।
कब दृग सफल होंहि दरसन करि, कब सुख मिलइ सेइ सुचि पद-रज॥
बरसत नैन नित्य पावस-से बीतत जुग सम एक-एक पल।
दीखत सदा सकल जग सूनौं, रहत प्रान नित अति बिरहाकुल॥
इतनेहि आय गये माधव पिय रहे मनाय मोहि मन मोहन।
देतहि अंक माल निर्बापित भई अग्नि सीतल भये तन-मन॥

(११)

सिखिपिच्छ, सुमन गुच्छ, सिर कुंचित केस री।
दृग बिसाल, तिलक भाल, नटवर बर बेस री॥
अधर मधुर, मुरलीधर, छेड़त मृदु तान री।
बनचर मृग, खग भुजंग, भये बिना भान री॥
घनस्याम, रस ललाम, चित्त-बित्त-हरन री।
मधुर रूप, श्रीअनूप, जन-मन सुख करन री॥
पीतबसन, मृदुल हसन, माखनके चौर री।
सखा मित्र, रुचि विचित्र, प्रेमी सिरमौर री॥

नील बसन, अमिय असन, बदन चन्द्र गौर री।
रूप बिमल, मधुर अकल, मोहन-मन चौर री॥
अति उदार, सुचि बिचार, मधुर सुखद बैन री।
निर्मल मति, पिय-सुख-रति, मृदुल मदिर नैन री॥
प्रेममयी, स्याममयी, परम-त्याग-चरित री।
महाभाव, प्रेम-चाव, रस-पवित्र-भरित री॥
स्यामसुखी, हसित मुखी, गुननिधि अनूप री।
स्याम भिन्न, नित अभिन्न एक युगल रूप री॥
चरन कमल, परम बिमल, नमौं बार-बार री।
राधा-हरि, हरि-राधा रसानन्द सार री॥

श्रीकृष्ण-स्वरूप माधुरी

(१२)

अहो ईड्य नव घन तन श्याम। तडिदिव पीत वसन अभिराम॥
मोर पिच्छ छवि छाजय भाल। नैन बिसाल सु-उर-बनमाल॥
रस पुंजा गुंजा अवतंस। कवल विषान नेत्र बर बंस॥
मृदु पर बृंदा बिपिन बिहार। नमो नमो ब्रजराज कुमार॥

(१३)

जो दिव्य मधु-रस पूर्ण सागर शान्त अति गंभीर है।
जो नित्य बन लहरें उछलता, लाँघ जाता तीर है॥
अति अमित ये उत्ताल मृदुल तरंग जिसका रूप है।
जो सर्वसुलभ सुचिन्त्य अति जो नित अचिन्त्य स्वरूप है॥
जो है उछलता कूदता आनन्दका आनन्द है।
जो ब्रह्म शाश्वत धर्म सुखका भी प्रतिष्ठानन्द है॥
मुनि परमहंसोंके मरे मनको तुरत देता जिला।
देता परम आनन्द निज गुण रूप मधुरस पिला॥
हरता सहज मन सिद्ध मुनियोंके, रमणियोंके सदा।
जो प्रेम बन्धनमें बँधा खुद छूट नहीं पाता कदा॥
नटवर वही नृत्यरत सौन्दर्य निधि घनश्याम है।

प्रति अंगपर जिसके निछावर नित करोड़ों काम है॥
(अगस्त, १९५९)

(१४)

कुंज-कुटि लाड़िली लाल छबीले।
बरबस मन-मति मोहत रसमयि राधा स्याम रसीले॥
अति कोमल कर परसि परस्पर निरखत नेत्र रँगीले।
मनकी कहत न बनै परस्पर दोउ हिय अति सरसीले॥

प्रेम-समुद्रकी मधुर तरंगे

(१५)

सौंप दिये आचार उसीको, सौंप दिये सब तन मन धन।
चाहे जहाँ, चाहे जैसे- ही रक्खे, उसका है जीवन॥

(१६)

[राग—भीमपलासी अथवा भैरवी (ताल-कहरवा)]

हृदय भवनमें बसे निरन्तर करते खेल मधुर अविराम।
देते नित्य महासुख मुझको दिखा रूप-सौन्दर्य ललाम॥
आ सकता न कल्पनासे भी उसमें कोई भी कुछ और।
क्योंकि सदा छाये रहते प्रियतम मेरे माधव सब ठौर॥
जो चाहे सो करते और कराते वे प्यारे स्वच्छन्द।
नित्य बढ़ाते रहते नव नव शुचि चिन्मय रसमय आनन्द॥
नहीं लोक-परलोक रह गये, रहा न कोई प्राणि-पदार्थ।
भोग-त्याग कुछ रहा न, मेरे रहे एक प्रियतम परमार्थ॥
मिटा-जगत् मिट गये जगत्‌के सारे द्वन्द्व दुःख-सुखरूप।
छलक रहा आनन्द रसार्णव श्याम ऊर्मिमय मधुर अनूप॥

(१७)

बिगड़ेगा अगर कहीं कुछ, तो तेरा ही बिगड़ेगा।
मेरा जब कुछ नहीं है, तो मेरा क्या बिगड़ेगा॥
मेरा तो एक तू ही है, सो कभी न बिगड़ेगा।

मैं भी जब तेरा हूँ, तो मेरा क्या बिगड़ेगा॥
(जनवरी १९५९)

(१८)

कितने तुम अनुपम अति सुंदर सकल विश्वमें हो सारे।
तुम अनन्त अमृतमय मधुमय जगके जीवन-धन प्यारे॥
तुम्हीं विश्वमय, सभी विश्व है, एक तुम्हीं से सना हुआ।
एक-एक अणु अखिल विश्वका तुम्हरे अणुसे बना हुआ॥

(१९)

रस रसपान रसिक रसदाता एक परम रसरूप।
परमाश्चर्य, अचिन्त्य अनिवर्चनीय अगम्य अनूप॥
कबहुँ न कतहुँ तुम्हारौ-मेरौ पलक बिछोह-वियोग।
नित्य सत्य अनिवार्य अलौकिक अविच्छेद्य संयोग॥

(२०)

प्रिय न रूपकी विस्मृति नहीं कबहुँ कुछ खेद।
एक परमरस सरिताके ही ये तरंगमय भेद॥
दोनों आप्यायित भये, मिले दिव्य रसरीति।
महाभाव रसराजकी अतुल अकल यह प्रीति॥

(२१)

नहीं चाहती तुमसे कुछ भी, नहीं तनिक सुख-आशा।
नहीं लोक-परलोक-नाशकी चिन्ता, तनिक दुराशा॥
कहीं रहो तुम, कहीं रहूँ मैं, पड़ता तनिक न अन्तर।
तुममें मैं, तुम मुझमें, रहती यह अनुभूति निरन्तर॥
मुझे कहीं भी, नहीं जरा भी, कोई भी कुछ मतलब।
तुम मेरे हो, मेरे हो बस, अटल अचल निश्चय अब॥
नहीं छूट सकते तुम प्यारे, अब मुझसे मनहारी।
सहज स्वभाव बँध गये तुम, यह गाँठ घुल गयी भारी॥

(२२)

तेरे चरणोंका चाकर मैं, रहूँ मधुर-सेवा-रत नित्य।
मेरी सेवाकी छाया, तेरे उरका प्रतिबिम्बित सत्य॥
अति मधुमयी सहज सेवामें होता कभी न तनिक विराम।
इसीलिये दोनोंको होते संतत अनुभव अति अभिराम॥

(अक्टूबर, १९५९)

(२३)

हूँ लिये लालसा मैं भी यह अपने केशोंसे ही प्यारी।
ये पोछें चरण असमोर्द्ध रहूँ बड़भागी सुखी सदा प्यारी॥
मेरा ही सत्त्व रहे इनपर, एकाधिपत्य मेरा प्यारी।
ये चरण सदा रक्खूँ हियमें, करमें पद रज पाऊँ प्यारी॥

(दिसम्बर, १९५८)

(२४)

स्वामिनि राधा विनय सुनु देखु भयो बेहाल।
दे निज चरन सरोज-रज-कन मोहि करहु निहाल॥

(जुलाई, १९६०)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार

(२५)

मैं अति कुटिल कुरुप कुमति सब बिधि गुण हीन दीन नारी।
वे प्रभु प्रेमानन्द सुधानिधि गुणनिधि शुचि सुन्दर भारी॥
मेरी ओर देखना भी है नहीं उचित उनको पल एक।
पर वे मुझपर ही न्यौछावर रहते सदा विरदकी टेक॥

(नवम्बर, १९५८)

(२६)

उपपत्नी मैं नहीं, इसीसे कभी न मुझे बिसरते तुम।
मिथ्या सुख-सम्मान दान कर कभी दूर नहिं करते तुम॥
पतिव्रता मैं सती, इसीसे निशिदिन नाथ! तुम्हारे घर।
दुःख दारिद्र्य सभी मिल मेरी सेवा नित करते मन भर॥
नौकर नहीं तुम्हारे सुखकी, नहीं चाहती सुखका दान।
प्रेम तुम्हारे की पत्नी हूँ मनमें सदा यही अभिमान॥

खुले हाथ संतत सारे दुःखोंको तुम करते हो दान।
वञ्चित कभी न रखते प्रभु! यह ही तो है मेरा सम्मान॥

श्रीकृष्ण जन्म-महोत्सव

(२७)

सकल जग छायौ अति आनन्द।
नंद-भवन प्रगटे प्रभु पूरन आप सच्चिदानन्द॥
लै सब सक्ति संग सब अंसनि अवतारन-अवतार।
भक्त-जनन सुखकारन, परम सुचि करन प्रेम-विस्तार॥
परमहंस-मुनि-मन-आकरषन, करन प्रेम-रस-दान।
लीला ललित करन रसमय रसरूप स्वयं भगवान॥
उमग्यौ आनँद-सिंधु, नारि-नर-वृद्ध तरुन अरु बाल।
पसु-पंछी, तरु-लता, चराचर नाचि उठे तत्काल॥
ऋषि-मुनि-मनुज, जीव सब, किंनर-देव-पितर-गंधर्व।
तन पुलकित, मन मुदित, तरंगित आनंदोदधि सर्व॥
जय जय नंद-जसोदा जय, व्रज जय, जय भारत देस।
जय जय नँदनंदन निरुपम निरवधि निधि जय अखिलेस॥

(जन्माष्टमी, १९६५)

(२८)

देखो, देखो, कैसा आया सुघड़ नीलमनी मेरी गोद।
निरखो आज नील-चन्द्रोदय, मन-नयनोंमें भर अति मोद॥

(अगस्त, १९६७)

(२९)

नंद देखते रहे रूप-लावण्य दिब्य छाया प्रति अंग।
नेत्र हुए अनिमेष, लग गयी निश्चल-रूप-समाधि-अभंग॥

(अगस्त, १९६७)

श्रीराम-गुण-गान

(३०)

राम रसायन

दिव्य जन्म दशरथ गृह राम। लक्ष्मण भरत शत्रुहन् राम॥
कौशिक मख संरक्षक राम। ऋषि मुनि सकल अभयकर राम॥
असुर सकल संहारक राम। शिला अहिल्योधारक राम॥
मुनि सह मिथिलागामी राम। शिवधनुभंजक स्वामी राम॥
परशुराम मदहारी राम। वरमाला गलधारी राम॥
मिथिला जनमनरंजन राम। जनक दुःख अति भंजक राम॥
सीता पाणिग्रहणकृत राम। सुषमा दिव्य सुधामय राम॥

भगवान्का स्वभाव

(३१)

हरिने जिसको कर लिया एक बार स्वीकार।
वह उनका ही हो चुका, उतर चुका भव-पार॥
रहेगा न उसमें कहीं, कभी प्रपंच-विकार।
बन जायेगा, बन चुका, वह शुचि सुख-भण्डार॥

(सितम्बर, १९६०)

(३२)

करते प्रेम अहैतुक बरबस, ग्रन्थिमुक्त मुनि आत्माराम।
खिंच हरिके उन दिव्य गुणोंसे जो स्वरूपगत नित्य ललाम॥

(३३)

हम बुरे हैं, अति बुरे हैं, बुरोंके सरदार हैं।
पर हमारे नाथका हमपर अनोखा प्यार है॥
है नहीं वे देखते कोई बुराई भी कभी।
सौंपनेको है सदा तैयार अपनेको अभी॥

(नवम्बर, १९५८)

(३४)

पकड़कर फिर छोड़ना मुझसे न बनता है कभी।
रस पिलाता, दे मधुरतम भाव, मैं उरके सभी॥

गीता

(३५)

भगवानकी विभूतियाँ

सब कुछ मुझमें ही रहता है, मैं सबमें हूँ नित्याव्यक्त।
पर विभूति-श्री-तेजपुञ्ज जो हैं, उनमें होता अभिव्यक्त॥
वज्र सकल आयुध समूहमें, कामधेनु गौओंके मध्य।
प्रजनोंमें हूँ कामदेव मैं सर्पोंमें वासुकि आराध्य॥

(अप्रैल, १९६१)

चेतावनी

(३६)

प्राण निकल जाते जाता वह छोड़ बाध्य हो, यह संसार।
खोकर व्यर्थ सुअवसर लेकर अघ अनर्थ का पूरा भार॥
क्यों आया? क्या किया? गँवाया क्यों मैंने जीवन निस्सार?
पछताता, रोता, कराहता, पर न हाथ लगता कुछ सार॥

अभिलाषा

(३७)

मैं नहिं देखूँ और कौं, मोय न देखैं और।
मैं नित देख्यौ ई करूँ तुम दोउनि सब ठौर॥

(३८)

पड़ा रहूँ एकान्तमें सोता पैर पसार।
तन मनकी सुधि भूल सब अग जग सकल विसार॥

(३९)

टुकड़े टुकड़े देह हो तनसे निकले प्रान।
तब भी मुख त्यागूँ नहीं, हरी नामकी तान॥

(४०)

श्रीराधामाधव-जुगल दिव्य रूप-गुन-खान।
अबिरत मैं करतो रहूँ प्रेम मगन गुन-गान॥

राधा गोबिंद नाम को करूँ नित्य उच्चार।
ऊँचे सुरमें मधुर मृदु, बहै दृगन रस धार॥
करि करुना या अधमपर करौ मोय स्वीकार।
पर्‌यौ रहूँ नित चरन में करतो जै-जैकार॥

अनुभूति

(४१)

कोई कुछ भी कहे, सुने कुछ भी, देखे कुछ भी निज भाव।
मेरे लिये नहीं, कुछ भी है, कहीं न कुछ तिलमात्र अभाव॥
सुनते नहीं कान परचर्चा, जीभ नहीं कहती कुछ अन्य।
नेत्र समाये देख नित्य प्रिय निजको निजमें होते धन्य॥
कानोंको सुनाती नित प्रियलीला, मुरलीकी मोहन तान।
वाणी नित करती प्रियचर्चा, नेत्र देखते रूप महान॥
मन रहता नित मत्त मग्न प्रियतम करता मधु रस पान।
प्रियतमको देता रहता वह मनवाञ्छित मधु रसका दान॥

(जून, १९६०)

(४२)

हैं आ बसे हैं जबसे श्रीश्यामघन हृदयमें।
तबसे है निकला सारा यह विश्व है हृदयसे॥
जब विश्व ही नहीं, तब रहते विकार कैसे?
है निर्विकार मानस, सब ओर पूर्ण प्रभुसे॥

(जनवरी, १९५९)

(४३)

हिय हरिसौं लाग्यौ रहे बाहेर खेले खेल।
लाभ हानि जीवन-मरन सबमें हरि सौं मेल॥

(मई १९५९)

(४४)

जाग रहे तुम कौन सदा मम निभृत हृदयमें हे प्यारे।
कौन अधीर बिरह-व्याकुल प्राणोंसे टेर रहे प्यारे॥
विविध कार्य नाना साजोंमें फँसा जगत्‌में हूँ प्यारे।

इसमें मेरा संग चाहते, हो तुम कौन कहो प्यारे॥

(४५)

कौन काम, कब, कैसे करिबौ, कहाँ कौनके संग।
सब कुछ करैं, करावैं वे ही रचैं अनोखे ढंग॥
कठपुतली उनके करकी हौं, निज मोहि नचावै।
खेल खिलावै, जो कुछ तिन मेरे प्रियके मन आवै॥

(सितम्बर १९६०)

(४६)

है मुझको अपना नाम याद नहिं आता।
हर लिये प्राण, अब कुछ भी नहीं सुहाता॥

(४७)

सुख-सम्पदमें नव प्रसाद अमृतका, हूँ मैं करता पान।
दुःख-संकटमें पाता हूँ तव मङ्गल करका स्पर्श समान॥
तव अनन्त आशाका दीपक अमर जला दो जीवनमें।
मरण अनन्तर सुप्रभात हो नव पद पङ्कज सेवनमें॥
ले लो सब आनन्द और यह प्रीति-गीति सब ले लो नाथ।
भीतर-बाहर एक मात्र हो तुमही मेरे जीवन-नाथ॥

(४८)

जन्म-मरण, न दुःख-सुख, कुछ है नहीं जिसमें कभी।
बह रही रस-सुधा-धारा नित्य प्लावित कर सभी॥
छा रहा आनन्द अनुपम परम अतुल सदा वहाँ।
नाचते रहते अनोखे नीलमणि नित हैं वहाँ॥

व्यवहार-परमार्थ

(४९)

प्रभु प्रियतम रहते हैं निशिदिन पास तुम्हारे आठों याम।
मिलती रहो रात दिन उनसे, रहो निरखती बदन ललाम॥

कभी न होता, कभी न होगा, क्षणभर उनका विषम बिछोह।
लिपटी रहो सदा चरणोंमें, छोड़ जगत्‌का सारा मोह॥
रहो कहीं भी, कैसे भी, वे करते तुममें नित्य निवास।
रस देते-लेते पलपल अति बढ़ता रहता परमोल्लास॥

(५०)

सकल साधना सिद्धि सून्य है, केवल कृपा सहारा।
कृपा कृपा बस कृपा एक ही है सर्वस्व हमारा॥

(जून १९५५)

(५१)

प्रभुके अनुपम सुख सागरमें जो डूबा रहता है निशि-दिन।
है मिलता नहीं कहीं ढूढ़े, उसको दुःखका तिलभर जीवन॥

(जुलाई १९५९)

(५२)

मिलना और बिछुड़ना जगमें है निश्चय प्रारब्धाधीन।
किन्तु चित्तका स्मृति-सम्मेलन रहता नित अन्तरसे लीन॥
बढ़ती रहती ममता प्रतिपल रहता चित्त दिवस-निशि लीन।
होता नित्य निवास हृदयमें रहती जैसे जलमें मीन॥

(५३)

जीवन-मरण चरणके चाकर, चित्त भावना हीन।
हरि-चरणाश्रित निर्भय-निर्भर, प्रेमोदधिमें लीन॥

(५४)

सर्वत्यागमय पूर्ण समर्पण, दोष-बुद्धि-विरहित व्यवहार।
भोग-मोक्ष-इच्छा-विरहित प्रियतम-सुख केवल जीवन-सार॥

(सितम्बर, १९६४)

(५५)

हो गये जब रामके तब शोक-भय कुछ भी नहीं।
सब तरफ धारा प्रबल आनन्दकी है बह रही॥

(५६)

नीच जाति जन्म भये भजनके अयोग्य नाहिं,
ऊँची जाति केवल नहीं भजन अधिकारी है।
जो ही भजे सो ही बड़ो, भक्तिहीन, हीन-मद,
कृष्ण भजन माँहि जाति पाँति ना बिचारी है।
कृष्ण-प्रेम दैन हारि नवबिधा भक्ति श्रेष्ठ,
सकल भजन माँहि यहै महा शक्तिधारी है।
सकल माँहि श्रेष्ठ एक कृष्ण-नाम कीर्तन जो,
दोष छाँड़ि लीन्हें, देवै प्रेमधन भारी है।

प्रकीर्ण

(५७)

हा! हा! कृष्ण प्राणनाथ! व्रजेन्द्रनंदन।
कहाँ जाऊँ! कहाँ पाऊँ मुरली-वादन॥

(५८)

ज्ञान विहङ्गम उड़-उड़ करके,
जाता है जिस पथ की ओर।
भक्ति-विहङ्गिनि भी सत्वर ही,
उड़ जाती उस पथ की ओर॥

(५९)

सफल मम ईस जीवन आज।
निरखि अगुन अरुप को गुनपूर्न छबिमय साज॥
सच्चिदानँद अलख, अज, अव्यक्त, अमित अनंत।
प्रगट सो सिसुरूप रस-सौन्दर्य-निधि भगवंत॥
धन्य व्रजके गोप-गोपी गौ मयूर तृनादि।
सगुन बपु धरि रहत जिनमहँ ब्रह्म अचल अनादि॥
सर्वसक्ति समेत पूर्न प्रभाव सह परमेस।

करत लीला चित्र मधुर सो धारि बालक भेस॥

(६०)

दीर्घ आयु आरोग्य सुसंगति शुचि सम्पत्ति धर्म से युक्त।
मंगलमय जीवन हो तुम दोनों का सदा स्नेह संयुक्त॥
शुभ विचार आचार शुद्ध हों, हों पवित्र मानस के भाव।
सबके सुख सबके हितका नित बढ़ता रहे हृदयमें भाव॥
हों आदर्श चरित्र चारु, चिन्ता विरहित हो चित्त उदार।
शुभ कर्मोंसे कीर्ति प्राप्त हो, कुल गौरव का हो विस्तार॥
त्याग, शील, सौजन्य, विनय, संयम से सुरभित हो शुचि मन।
जीवमात्रका प्रिय हितकर हो सहस नित्य मधुमय जीवन॥
जीवन का उद्देश्य एक हो, प्रभुपद पंकज-प्रीति अनन्य।
प्रभु सेवा में सहज समर्पित हो तन मन धन पावन धन्य॥
मानव जीवन की यह चरम सफलता परम सिद्धि सुमहान।
करें प्रदान प्रेम रस सागर श्री राधा माधव भगवान॥
सहज सभी के लिये सदा रहना यह मंगल आशीर्वाद।
इसका पावें शुभ आस्वाद॥

(६१)

सेवा, समता, सत्य, सुसंयत, सदाचारमय हो जीवन।
हो सौजन्य सौख्य शुचितम सौरभित सुविकसित सदृश सुमन॥
सद्विचार, सद्भाव, सुसंतति, शुभ सम्पत्ति धर्मसे युक्त।
हों आदर्श चरित्र सर्वहितमय सर्वथा प्रेम संयुक्त॥
जीवन का उद्देश्य एक हो प्रभु पद पंकज प्रीति अनन्य।
प्रभुसेवा में सहज समर्पित तन-मन-धन हों धन्य॥
प्रभुकी सहज कृपा से छा पायें ना कभी शोक विषाद।
हों दीर्घायु निरामय-----॥

(६२)

दीर्घ आयु, अरोग्य, सुसंतति, हो सम्पत्ति धर्मसे युक्त।

दोनों करें त्याग मङ्गलमय, रहें सदैव प्रेमसंयुक्त॥
हो आदर्श चरित्र चारु चिन्ताविरहित हो चित्त उदार।
शुभ भावोंसे कीर्तिलाभ हो, कुल-गौरवका हो विस्तार॥
सौमनस्य-सौजन्य-सौख्य-सौशील्य-सौरभित सदृश सुमन।
जीव मात्रके हित-सुखका ही बना रहे जीवन साधन॥
धर्मसाधनासे दोनोंके परम समुज्ज्वल हों जीवन।
सेवाव्रतसे सुषमामय हों, हों पवित्र सब तन-मन-धन॥
कर्मक्षेत्र अति संयममय हो, हो आनन्द शान्ति पावन।
हो सर्वस्व समर्पित प्रभुको, हो उनका ही शुभ सेवन॥
राधा-माधवपद-पङ्कजमें बढ़े निरन्तर प्रेम अनन्य।
चिन्तनमय हो चित्त नित्य, हो उनकी ही सुस्मृतिसे धन्य॥
सद्भावना सहज यह होती हृदय-देशमें बारंबार।
पर बरसे नित प्रभुकृपा अपार॥

लोकगीत

(काव्यमें लोकगीत एक विधा मानी गयी है। श्रीपोद्दारजीने लोकगीत लिखनेके लिये लोकगीत नहीं लिखे पर उस समय विवाहके समय परम्परागत गीत गाये जाते थे, उनमें सुधारकी दृष्टिसे विवाहके समय गाने योग्य अच्छे गीत लिखे थे। ऐसे तीन गीत पद-रत्नाकरमें दे दिये गये थे। शेष गीत नीचे दिये जा रहे हैं।)

(६३)

जकड़ी

(कुरीतिसुधार)

सुनो सब अग्रवाल भाई।
कोई जाति भलाई करो तजो सब कुरीति दुखदाई॥
बाल और बृद्ध ब्याह छोड़ो, कोई जोडीको बर देख,
पुत्र कन्याका दुख तोड़ो, करो बांको जीवन सुखदायी॥ कोई जाति०
दानकी दशा सुधारोजी, कोई देश कालने देख,
धर्मको मार्ग बिचारोजी, लुटाओ मत हेडा मांई॥ कोई जाति०
गणेशजी लक्ष्मीजीने ध्यावो; कोई बेद पुराणां मांय लिख्या
देवामें मन ल्यावो, तजो मालसी महामाई॥ कोई जाति०

बिदेशी कारबार त्यागो, कोई भारतके हित काज देशकी सेवामें लागो
करो देशी बिपार भाई॥ कोई जाति०
मीलांके कपड़े मांई, कोई लगे गऊ सूअरकी चरबी दया नहीं आई,
वणो मत हिंसामें सहाई॥ कोई जाति०
शुद्ध थे खादी पैरोजी, कोई वस्त्र विदेशी और मीलांका सगला गेरोजी
धरममें बरतो मन ल्याई॥ कोई जाति०
हरीके चरणोंमें चित ल्यावो, कोई करो कुरीति त्याग प्रेमसे,
प्रभुका गुण गावो, होय जो परम सुःखदाई॥ कोई जाति०

(६४)

ढाल सीठना

(पविव्रतधर्मकी महिमा)

साहजीकी जोयड़ लाडलीजी सुन्दर नारी, हाजी सगी,
पति की सेवा मांय, सगीजी सुन्दर नारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
धरम पतिव्रत धारल्योजी सुन्दर नारी, हांजी सगी,
अबिचल होय सुहाग, सदा आनन्दकारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
पतिवरतके कारण ये सुन्दर नारी, हांजी सगी,
जमने लीन्यो जीत, शवित्री सी नारी, तन मन धन सब ल्यो वारी॥
मुरदो पती जिवाय लियोजी सुन्दर नारी, हांजी सगी,
जमको मारग रोक, सगीजी लिया वर भारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
पायो खोयोड़ो राज्यजी सुन्दर नारी, हांजी सगी,
सुसरेकी आय गई आंख, भाई सौ सुखकारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
करकर राजी जमराजनेजी सुन्दर नारी, हांजी सगी,
लीन्या सो पुत्तर मांग, मोत पतिकी टारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
अपणे पतिने छोड़कर सुन्दर नारी, हांजी सगी,
पुरुष न जग बिच और, लखे युं उत्तम नारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
पर पुरसांने देखकर सुन्दर नारी, हांजी सगी,
समझे भाइबाप समान, सोई मधम नारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
कुलको धरम बिचारकर सुन्दर नारी, हांजी सगी,
(जो) परपुरुषांसे डरे, नीच वा है नारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥

पतिकी सेवा ना करेजी सुन्दर नारी, हांजी सगी,
(बैं को) होवे नरकाँबास, दुःख पावे भारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
पतिबरतने पालकर जी सुन्दर नारी, हांजी सगी, पावे हरिको धाम,
सदा मङ्गलकारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥
म्हारी सबसे बीनतीजी सुन्दर नारी, हांजी सगी,
पतिकी आज्ञा मांय, रहो थे समधण सारी, तन मन धन सब द्यो वारी॥

(६५)

ढाल सीठना

(लुगायांको धर्म)

हाँजी सगीजी छोड़ो ममता मान, स्वार्थ तज भजो सदा भगवान्,
बुरा गुण त्यागोजी, गुणाने ग्रहण करो थे,
हां गुणाने ग्रहण करो थे॥ १॥
हांजी सगीजी सौखीनीने छोडो, ऐश आरामीसे मुँह मोडो,
खादी पैरोजी, मोह गहणाको त्यागो,
हां मोह गहणाको त्यागो॥ २॥
हांजी सगीजी, पती है सबसे दामी गहणो, श्रीशावित्रीको यूं कहणो,
करो थे धारणजी, होय सब दुःख निवारण,
हां होय सब दुःख निवारण॥ ३॥
हांजी सगीजी, रखो प्रेम सब सेती, बोओ स्नेह-प्रीतिकी खेती,
मधुर फल लागेजी, भाग थारे कुलका जागे,
हां भाग थारे कुलका जागे॥ ४॥
हांजी सगीजी, बालक सभी पढ़ावो, प्रभुका साचा भक्त बनाओ,
स्वारथका त्यागीजी, अहिंसक हो बड़भागी।
हां अहिंसक हो बड़भागी॥ ५॥
हांजी सगीजी, भक्त होय अर्जुनकासा बीर, जनकसा ज्ञानी हो मतिधीर,
भक्त होय बिदुर सरीसाजी, भजे निशदिन जगदीशा,
हां भजे निशदिन जगदीशा॥ ६॥
हांजी सगीजी, होवे तुलाधारसा नामी, भामासाहसा होय अनुगामी,
जगत्में जश फैलावेजी, देशको नाम बढ़ावे,

हां देशका नाम बढ़ावे॥ ७॥

हांजी सगीजी, पुत्रियां अपनी सभी पढ़ाओ,पतिव्रत धर्म उन्हें सिखलाओ,
सनातन धर्म बताओजी, कामनाहीन बनाओ।

हां कामनाहीन बनाओ॥ ८॥

हांजी सगीजी, होय फेर सावित्रीसी नारी, सीता दमयन्ती पतिप्यारी,
गारगी और मैत्रयीजी, धर्म और कीर्ति बढ़ावे।

हां धर्म और कीर्ति बढ़ावे॥ ९॥

हांजी सगीजी, थे तो तज दो सभी कुरीति, धरमसे जोड़ो साची प्रीती,
रीति थे सभी सुधारोजी, धर्मकी बात बिचारो।

हां धर्मकी बात बिचारो॥ १०॥

हांजी सगीजी, भूत प्रेताँकी पूजा त्यागो, शास्त्र बचनाँमें मन अनुरागो,
पीर मालासी छोड़ोजी, रिगतियेसे मुँह मोड़ो,

हां मावलीसे मुंह मोडो॥ ११॥

हांजी सगीजी, कह्यो है गीतामें भगवान्, भूत पूजक होय भूत समान,
गति भूतांकी पावेजी, धरम और कीर्ति घटावे,

हां धर्म और कीर्ति घटावे॥ १२॥

हांजी सगीजी, शेषमें अरज सुणो या म्हारी, भजो नारायण विपताहारी,
दुख सब जावेजी, सुख साचो होय जावे,

हां, सुख साचो होय ज्यावे॥ १३॥

(६६)

ढाल सीठना

(हिन्दुस्तानकी दशा)

हांजी सगाजी, भारतकी दशा बिचारो, दीनता उसकी आज निहारो
कारण दीन दशाकोजी, पढो इतिहासां मांई-हां-पढो इतिहासां मांई॥
गोरा जब भारतमें आया, देख भारतकी दशा चकराया
जाल रच भारीजी, देशने कर्‌यो भिखारी-हां-देशने कर्‌यो भिखारी॥
कपड़ा होता बढ़िया त्यारी, मलमल तंजियेब और साड़ी
बिलायतका सब भाईजी, सदा लेता मन चाई—हां सदा लेता मन चाई॥
बिलायतमें कानून बणाया, हिन्दका कपड़ा बन्द कराया

जेलका दंड दिवायाजी, तो भी नहीं रोकण पाया हां तो भी नहीं रोकण पाया॥
बिलायतका सारा नरनारी, हिन्दके कपडे सेती यारी
छोड नहीं पायाजी, हुकम फेर अठे सुणाया, हां-हुकम फेर अठे सुणाया॥
कारीगर ढाकेका बुलवाया, अंगूठा उनका फेर कटवाया
कारीगरी मिटाईजी, दुरदशा भोत कराई हां-दुरदशा भोत कराई॥
कर्‌यो यूं कारीगरी को नाश, देशके धनको कीन्यो ग्रास
कारखाना उठवायाजी, विदेशी वस्त्र मंगाया-हां-विदेशी वस्त्र मंगाया॥
वस्त्र विदेशी आणे सेती, देशकी सूख गयी सब खेती
अन्न बिन प्राण गवायाजी, लाल भारतका जाया, हां-लाल भारतका जाया॥
इसीसे वस्त्र विदेशी त्यागो, शुद्ध खादीमें मन अनुरागो
सूत चरखेको कातोजी, देशभक्ति-मदमातो-हां-देशभक्ति-मदमातो॥
हिंसा और झूठने त्याग, देशका भगत बणो बड़भाग
बचन गांधीजीका मानोजी, देशको हित पहिचानो-हां-देशको हित पहिचानो॥

(६७)

ढाल सीठना

(सत्संगकी महिमा)

हांजी सगाजी, भजल्यो दीनदयाल, भक्त-दुःख-भंजन श्रीगोपाल,
पतित उद्धारणजी, करे सब कष्ट निवारण, —हां करे सब कष्ट निवारण॥ १॥
हांजी सगाजी, प्रभु भगतीके मांय, चित्तने दीज्यो आप लगाय,
कामना छोडोजी प्रभू-चरणां मन जोड़ो—हां प्रभू-चरणां मन जोड़ो॥ २॥
हांजी सगाजी, भक्ति सत्संगतसे होवे, कालिमा मनकी सारी धोवे,
संत संगतमें लागोजी, कुसंगत सारी त्यागो, —हां कुसंगत सारी त्यागो॥ ३॥
हांजी सगाजी, भगतांकी महिमा अपरम्पार, आप प्रभु बरणी बारम्बार,
भगतसे प्रेम लगावेजी, सभी बैरी डर ज्यावे, -हां सभी बैरी डर ज्यावे॥ ४॥
हांजी सगाजी, कामना, क्रोध, लोभ, अभिमान, मोह बैरी पांचू बलवान,
इनांने मार हटाओजी (जो) साधु संगत मन ल्यावो -हां साधु संगत मन ल्यावो॥ ५॥
हांजी सगाजी, सन्त है चन्दनसा उपकारी, चन्दन काटे जाय कुल्हाड़ी,
दुःख नहीं ल्यावेजी, सुगंधी देय अपणावे -हां सुगन्धी देय अपणावे॥ ६॥
हांजी सगाजी, यूं ही सन्त करे उपकार, पापीको कर दे उद्धार,

भक्त होवे सुखकारीजी, मिटा दे पीड़ा सारी -हां मिटा दे पीड़ा सारी॥ ७॥
हांजी सगाजी, करल्यो थे सत्संग, जिके स्यूं चढ़े भक्तिको रंग,
कदे नहीं छूटेजी, अन्त भवबन्धन टूटे-हां अन्त भवबन्धन टूटे॥ ८॥

(६८)

ढाल सीठना

(श्रीहरिकी भक्ति)

परमेश्वरके ध्यानमेंजी सगाजी मस्त रहो दिनरात, कुसंगत छोड़द्योजी,
सजन संग जोड़द्योजी, थारो चित्त शुद्ध हो जाय।
त्यागकर कामनाजी सगाजी (थे तो) भजल्यो श्रीभगवान्,
दु:ख सब जायसीजी, सुखमन पायसीजी थारो जन्म सुफल होय जाय।
पर उपकारमेंजी, सगाजी सदा रहो हुंसियार
वाथन त्यागदोजी, गरीबने भाग द्योजी थारो धन सार्थक हो जाय।
विषय थिर ना रहेजी सगाजी छोड़ो इनकी आश
विषयमें दु:ख घणाजी, समझ थोथा चणाजी, छोड्यां भक्ति भोत बढ़ जाय।
चित्तसे शरण ल्योजी, सगाजी, प्रभू चरणांके मांय, प्रभू किरपा करैजी
दुख सारा हरेजी कोई जन्म मरण छुट जाय।

(६९)

जवाई भोजनके समय

(शुद्ध भोजनकी महिमा)

धोया धोया थाल परोस दिया भातजी,
आवो आवो कुंवरजी थे बैठोने थालजी॥
अन्न देवताने मनसे करल्यो नमस्कारजी,
आनंद सेती भोजन करो प्यारा सिरदारजी॥
अन्न और जलने मानो देहको आधारजी,
जीवांपर दया ल्याकरके रचदीन्या करतारजी॥
सत् कमाई करकर जगमें साचो धन ल्यावेजी,
उस धनसेती चाहे जितनो अन्न मंगावेजी॥
इसो अन्न ही सब भांती स्यूं शुद्ध कुहावेजी,
शुद्ध अन्नके भोजन होती आछी बुद्धि आवेजी॥

बुरी भावना दिल अंदरकी सब मिट ज्यावेजी,
परमेश्वरके सुघड रूपमें मन लग ज्यावेजी॥
माताने मानो जानकी पिताने श्रीरामजी,
चारुं भाई हाथ जोड़कर करो परणामजी॥
गंगा न्हाय गोमतीमें नहावोजी,
पुसकरजीकी पैडियां प्रभूको ध्यान लगावोजी॥
साचे बेपार सेती धन कमाकर ल्यावोजी,
उस धनसेती अन लेकर प्रभूके भोग लगावोजी॥
सब जीवांने एक श्रीहरीको रूप जाणोजी,
देकर अन्नदान सबने कामना मत आणोजी॥
ऐसी भगति और सेवासे राजी होय भगवानजी,
कुंवरजी या म्हारी अरजी आप लीज्यो मानजी॥

(७०)

जवांई

(मनके विकारोंका वर्णन)

हांरे इण सरवरियांकी पाल जवांई मन धोयल्योजी, ह्मारा राम॥
हांरे रामा मनपर मैला है तीन जिकास्युं भटक्यो फिरेजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, मल आवर्ण विक्षेप तीन्याका नाम है जी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, इन तीनांके हेतु चित्त स्थिर हो नहीं जी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, विषयामें सुख जाण सदा भरम्यो फिरेजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, भजन, ध्यान, सत्संग कर्यां तीनूं मिटेजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, चित्त शुद्ध होय ज्याय टिके भगवानमें जी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, हरिचरणा चित जाय छुटे सब कामनाजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, भगति प्रकट होय ज्याय दुःख सब बीनसेजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, दुख बिनस्यां सुख होय कदे फिर ना घटेजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, इण रीतीस्युं आज आप मन धोयल्योजी, ह्मारा राम॥
हांरे बाला, आनन्द होय अपार सदा सुखमें रहोजी, ह्मारा राम॥

(७१)   जवांई

(नित्यकर्म)

प्यारा लगोजी, जवांई म्हाने प्यारा लागोजी,
इण रीतीस्यूं पालो थे नेम, जवांई म्हाने प्यारा लागोजी।
सवेरे उठोजी, सूरज उग्यां पैलीजी,
हांजी थे तो ढाई घड़ी हररोज, प्रभुको ध्यान लगावोजी,
नितप्रति न्हावोजी, ताजे पाणी सेतीजी,
फेर शुद्ध वस्त्र तन पैर, आसन आप लगाओजी॥
सन्ध्या कर ल्योजी, प्रभूजीको ध्यान लगावोजी,
थे तो करल्यो नित्य अभ्यास, आत्माको रूप बिचारोजी।
हरि नामने जपल्योजी, नामीको रूप निहारोजी,
थे तो सभी कामना छोड़ निरंतर सुमरण राखोजी।
माता पिताकेजी, ब्राह्मण गुरुजन सबकेजी,
बड़ा भाई भाभी समेत, चरणांमें शीश निवावोजी।
भोजन करल्योजी शुद्ध और सात्त्विक भोजनजी,
कोई देहकी रक्षाके हेतु, स्वाद रसनाका त्यागोजी,
बेपारमें लागोजी, भारतको हित देखोजी।
थे तो सच्चाईके साथ, साचो धन खूब कमावोजी।
उस धननेजी सभी जीवांके हितमेंजी,
थे तो देख पात्र करो दान, वृथा मत खरचोजी।
खरच घटाओजी, गरीबांको हित देखोजी,
थे तो ऐश, आरामीने छोड़ सदा सुख शांति भोगोजी।
नेम मुताबिकजी, कर्म करो धनके खातरजी,
कोइ छः घंटा दिन मांय, कर्मफल प्रभुने अरपोजी।
सूरज छिपतांजी, फेरूं सन्ध्या करल्योजी,
प्रभूजीको करकर ध्यान, आनंदसे भोजन पावोजी।
सतसंगत करल्योजी, हरि भगतीकी बातांजी,
घंटा दोय भगतांके साथ, बिताकर सुखसे सोवोजी।
इण रीतीस्यूंजी, नित्य करमांको पालनजी,
थे तो करो कामनाने छोड़ प्रभूकी प्रीतीके खातरजी।

(७२)

ढाल नणदोई

(देशभक्ति)

प्यारा लागोजी, नणदोई म्हाने प्यारा लागोजी,
भारतका साचा सन्तान, नणदोई म्हाने प्यारा लागोजी।
स्वारथ त्यागोजी देशकी सेवामें लागोजी,
हांजी थे भारतके हितमांय नणदोई साचे मनसे लागोजी।
देशके कारणजी नणदोई श्रीगांधी महात्माजी,
सत्य अहिंसाका पालनहार (जगतका सबसे बड़ा सिरदार) जेल तपस्यामें लाग्याजी
गांधीजीकी आज्ञाजी, वस्त्र विदेशी छोडोजी,
थे तो खादी लेओ तनधार, मुख्य थारो कर्तब पालोजी।
खादी पहरोजी, वस्त्र विदेशी गेरोजी,
थे तो, हिंसा द्वेषने त्याग, गांधीजीकी आज्ञा मानोजी।

----×----

(२७)

पद-रत्नाकरके पदोंका रचनाकाल

श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके सभी पदोंका रचनाकालका पता लगाना बड़ा कठिन कार्य है। बहुत परिश्रम करनेपर १२०५ पदोंके रचनाकालका पता लग सका। इसमें अधिकांशका तो ठीक पता लग गया परन्तु कुछके प्रकाशन वर्षको ही रचनाका वर्ष माना है। रचना उसके पहलेकी हो सकती है। कुछ महानुभावोंने अपने पत्रोंमेंसे रचनाकाल देना स्वीकार नहीं किया, अन्यथा और भी पदोंका रचनाकाल पता लग सकता था।

वर्ष	पदोंकी संख्या	वर्ष	पदोंकी संख्या
१९२२-२३	८०	१९६०	८५
१९२४-२६	९	१९६१	८४
१९२७-२९	२२	१९६२	६९
१९३०-४०	१०	१९६३	६७
१९४१-५०	२२	१९६४	४५
१९५१-५२	१३	१९६५	८३
१९५३-५४	३८	१९६६	८२
१९५५	१०	१९६७	२६
१९५६-५७	१३८	१९६८	१३५
१९५८	२४	१९६९	६१
१९५९	६६	१९७०	३७
		पूरा पता नहीं लगा	३६०
		कुल योग —	१५६५

रचनाकालका विस्तृत विवरण

वर्ष १९२२-२३ **पद-संख्या**

५१, ५२, ५३, ५५, ५६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३६, १३८, १४२, १४३, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, २१२, २४०, २५९, २९९, ३०६, ३०७, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ८३४, ८३५, ८७९, ९१९, ९३२, ९३७, ९६०, १००४, १००५, १००८, १००९, १०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१४, १०१८, १०२०, १०३८, १०४०, १०४१, १०४३, १०४४, १०४६, १०४७, १०९८, १०९९, ११००, ११०१, ११०३, ११०५, ११०६, ११६१, ११६२, ११६५, १२३७, १२५२, १२५३, १२५४, १२५८, १३०३, १४१२, १४२९, १४३१, १५६०, १५६१, १५६२,

१९२४-२६

१३९, २२३, १००६, १०३९, १०४५, १०४८, १०९७, १२३४, १२३९,

१९२७-२९

५४, १४०, १४१, १४४, ४१८, ७६२, ८५९, १००१, १००२, १००७, १०१६, १०१७, १०१९, १०५०, १०५२, ११०२, १२३५, १२५७, १२५९, १३३१, १५११, १५१२

१९३०-४०

१४५, १५२, २१८, ६६४, ७०६, ८८२, ९९७, १०२८, १३९२, १५४५

१९४१-४९

२२२, २५३, ६७३, ८२०, ८२१, ८६८, ९२७, ९६२, ९६३, ९६४, ९६६, ९७०, ९७२, ९७४, ९९५, १२७५, १५०४,

१९५०

१०३५, १०६१, १२९७, १४१८, १४६६

१९५१-५२

८२, ९२, १०२, २२४, ९८९, १२८९, १३१९, १३३८, १३३९, १४३९, १४५१, १५४४, १५६४

१९५३-५४

८९, ९९, ११४, १९०, २०७, २०८, २०९, २२१, ८१८, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५७, ८६५, ८९९, ९०५, ९११, ९१३, ९२३, ९२९, ९४४, ९७५, ११२७, १२००, १२६४, १२८१, १३१७, १३८०, १३८८, १४२१, १४५२, १४७८,

१९५५

१४७९, १५०१, १५२२, १५४०, १५४२

१९५६-५७

१३, ५०, ६०, ७४, ७५, ७६, ७८, ८०, ८३, ८५, १०५,१०६, ११०, ११२, १३५, १५३, २०२, २१७, २३३, २३४, २४१, २४६, २४७, २४८, २४९, २५६, २६०, २६२, २७६, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०९, ३१२, ३१९, ३२०, ३२१, ३३२, ३४१, ३४४, ३५२, ३५७, ३७२, ३८८, ३९६, ३९८, ४१५,

૪૧૭, ૪૨૮, ૪૩૧, ૪૩૨, ૪૩૩, ૪૩૪, ૪૩૫, ૪૩૯, ૪૪૦, ૪૪૫, ૪૪૬, ૪૫૬, ૪૭૭, ૪૮૦, ૫૦૨, ૫૦૮, ૫૦૯, ૫૧૦, ૫૧૪, ૫૧૫, ૫૨૬, ૫૨૭, ૫૨૮, ૫૩૩, ૫૪૩, ૫૪૭, ૫૫૧, ૫૫૨, ૫૫૩, ૫૫૯, ૫૮૯, ૬૦૬, ૬૦૮, ૬૦૯, ૬૧૦, ૬૧૧, ૬૧૩, ૬૧૬, ૬૧૭, ૬૨૭, ૬૩૫, ૬૪૭, ૬૫૯, ૬૭૦, ૭૧૭, ૭૨૩, ૭૨૭, ૭૨૯, ૭૩૦, ૭૫૨, ૮૦૪, ૮૦૯, ૮૨૪, ૮૩૨, ૮૫૮, ૮૬૨, ૮૭૧, ૮૭૭, ૮૮૪, ૮૯૧, ૯૨૨, ૯૨૪, ૯૩૩, ૯૭૯, ૯૮૭, ૯૯૪, ૧૦૨૨, ૧૦૨૩, ૧૦૨૪, ૧૦૨૫, ૧૦૨૭, ૧૦૨૯, ૧૦૩૮, ૧૦૫૪, ૧૪૧૫, ૧૪૪૩, ૧૪૪૯, ૧૪૬૨, ૧૫૪૩

૧૯૫૮

૨, ૧૨૩, ૧૮૨, ૩૨૫, ૪૪૮, ૪૫૦, ૪૫૮, ૫૧૮, ૫૩૬, ૭૧૯, ૭૭૭, ૭૮૨, ૭૮૪, ૭૯૩, ૮૦૨, ૮૦૩, ૮૦૫, ૮૦૬, ૮૪૪, ૮૭૨, ૯૧૫, ૧૦૬૨, ૧૦૯૧, ૧૨૪૩

૧૯૫૯

૧૭, ૮૭, ૯૭, ૧૦૪, ૧૨૧, ૧૫૯, ૧૬૫, ૨૬૮, ૨૯૫, ૩૧૫, ૩૪૩, ૩૮૯, ૩૯૦, ૪૩૭, ૪૫૪, ૪૫૫, ૪૬૧, ૪૬૮, ૪૭૫, ૪૭૮, ૪૮૨, ૪૮૪, ૪૯૧, ૫૦૪, ૫૦૫, ૫૩૨, ૫૬૦, ૫૬૬, ૬૨૬, ૬૨૯, ૬૩૪, ૬૪૩, ૬૪૮, ૬૬૨, ૭૦૦, ૭૦૫, ૮૪૩, ૮૭૪, ૮૮૯, ૯૦૯, ૯૪૦, ૯૪૧, ૯૭૬, ૯૮૮, ૯૯૦, ૯૯૧, ૯૯૨, ૧૦૭૮, ૧૦૮૨, ૧૦૯૦, ૧૧૩૧, ૧૧૩૯, ૧૧૪૫, ૧૧૪૭, ૧૧૪૮, ૧૨૮૭, ૧૩૦૧, ૧૩૫૬, ૧૩૬૯, ૧૪૩૨, ૧૪૩૪, ૧૪૩૮, ૧૪૪૧, ૧૪૪૨, ૧૪૫૦, ૧૪૮૮

૧૯૬૦

૫, ૩૦, ૩૨, ૩૫, ૪૨, ૪૩, ૪૯, ૯૬, ૧૧૩, ૧૨૨, ૧૨૪, ૧૨૫, ૧૨૬, ૧૫૭, ૧૬૦, ૧૬૬, ૧૮૩, ૧૮૪, ૧૯૧, ૨૦૦, ૨૨૦, ૨૨૭, ૨૫૧, ૨૬૩, ૨૬૪, ૨૬૭, ૨૯૭, ૩૨૪, ૩૫૯, ૩૮૫, ૩૮૬, ૩૮૭, ૪૦૫, ૪૦૭, ૪૫૧, ૪૯૪, ૫૧૨, ૫૧૭, ૫૨૨, ૫૩૦, ૫૪૦, ૫૫૦, ૫૫૪, ૫૫૫, ૫૫૬, ૫૫૭, ૫૭૫, ૫૮૦, ૫૮૩, ૬૦૫, ૬૧૨, ૬૧૪, ૬૧૫, ૬૨૧, ૬૨૩, ૬૬૦, ૬૭૨, ૬૮૬, ૮૪૦, ૮૪૫, ૮૬૪, ૯૧૪, ૯૧૬, ૯૨૮, ૯૬૧, ૯૯૩, ૧૧૨૪, ૧૧૪૨, ૧૧૭૯, ૧૧૮૨, ૧૧૮૪, ૧૧૯૪, ૧૨૦૨, ૧૨૦૮, ૧૨૧૦, ૧૨૧૨, ૧૨૩૩, ૧૨૪૪, ૧૨૪૭, ૧૨૫૦, ૧૨૫૬, ૧૨૬૯, ૧૨૮૪, ૧૩૨૦, ૧૫૨૦

૧૯૬૧

૧, ૧૪, ૧૮, ૨૯, ૪૭, ૭૯, ૧૧૬, ૧૧૯, ૧૫૫, ૧૮૯, ૧૯૭, ૨૩૬, ૨૩૭, ૨૫૨, ૨૯૬, ૩૩૩, ૩૩૪, ૩૩૫, ૩૩૬, ૩૫૮, ૩૭૪, ૩૭૮, ૩૭૯, ૩૯૯, ૪૪૯, ૪૬૩, ૪૬૪, ૪૯૮, ૫૨૪, ૫૩૯, ૫૬૮, ૫૬૯, ૫૭૦, ૬૦૭, ૬૩૯, ૬૪૬, ૬૬૧, ૬૬૮, ૬૭૪, ૬૭૫, ૭૨૨, ૭૩૫, ૭૩૭, ૭૫૯, ૭૮૫, ૭૮૬, ૭૯૨, ૮૦૮, ૮૩૧, ૮૭૮, ૯૦૦, ૯૦૧, ૯૨૧, ૯૩૦, ૯૩૬, ૯૫૫, ૧૦૫૬, ૧૧૧૫, ૧૧૫૫, ૧૧૬૦, ૧૧૭૪, ૧૧૭૫, ૧૧૭૭, ૧૧૮૧, ૧૧૮૬, ૧૧૮૮, ૧૧૮૯, ૧૧૯૭, ૧૨૧૧, ૧૨૧૩, ૧૨૪૨, ૧૨૯૧, ૧૨૯૯, ૧૩૦૨, ૧૩૩૫, ૧૩૫૧, ૧૩૬૨, ૧૪૦૨, ૧૪૭૭, ૧૪૯૫, ૧૫૦૮, ૧૫૧૭, ૧૫૨૧, ૧૫૪૬

૧૯૬૨

૮, ૯, ૧૨, ૨૦, ૨૫, ૨૬, ૪૧, ૪૫, ૫૯, ૨૧૧, ૨૪૪, ૨૪૫, ૨૯૮, ૩૩૦, ૩૪૫, ૩૪૬, ૩૪૭, ૩૪૮, ૩૫૩, ૩૮૩, ૩૮૪, ૪૦૯, ૫૨૧, ૫૩૫, ૫૪૪, ૬૪૪, ૬૫૦, ૬૫૫, ૬૫૭, ૬૭૮, ૭૨૪, ૭૪૬, ૭૫૪, ૭૬૮, ૭૬૯, ૭૭૧, ૭૯૫, ૮૦૦, ૮૧૦, ૮૧૨, ૮૧૭, ૮૩૦, ૮૪૭, ૮૮૬, ૮૯૨, ૮૯૩, ૮૯૪, ૮૯૫, ૯૦૨, ૧૦૮૯, ૧૧૨૬, ૧૧૪૬, ૧૧૮૭, ૧૨૦૪, ૧૨૪૦, ૧૨૪૯, ૧૨૮૮, ૧૩૫૭, ૧૩૭૫, ૧૩૯૧, ૧૪૦૦, ૧૪૦૬, ૧૪૧૯, ૧૪૨૪, ૧૪૨૫, ૧૪૩૭, ૧૪૫૪, ૧૪૬૦, ૧૫૪

१९६३

१६, २३, २४, २८, ४८, ७१, ८४, १०१, १०७, १६३, १७८, १९१, १९६, १९८, २३०, २५७, ३१७, ३२९, ३६९, ३९३, ३९४, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२९, ४३०, ४७६, ५०६, ५२३, ५४५, ६०२, ६३१, ६५८, ६७७, ६९८, ७०२, ७४९, ७८१, ७८८, ८४६, ८६६, ८९६, ९३१, ९४३, ९४७, ९५३, ९६७, ९७१, १०८७, ११११, ११४४, ११५०, ११५१, ११७६, ११८०, ११९५, १२१५, १३९९, १४५३, १४५७, १४८०, १४८७,

१९६४

११७, १७३, २६९, २७०, २७१, ३५०, ३५५, ३९५, ४०८, ४१२, ४१३, ४१४, ४२०, ४७०, ५२०, ५४१, ६०४, ६३६, ६५४, ६६९, ६९६, ७५८, ८१३, ८८०, ८९०, ९४६, ९५४, १०३३, १०५९, १११०, ११८३, ११९९, १२६०, १२८२, १३२७, १३६५, १४१६, १४९८, १५००, १५१५, १५१९, १५२४, १५२५, १५३०, १५३८

१९६५

७, १५, २७, ३६, ४०, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ११५, १२०, १६७, १७६, १७७, २१३, २६५, २६६, २९३, ३१६, ३६७, ३७०, ४४२, ४४३, ५०७, ५२९, ५७८, ६०३, ६८८, ७०९, ७१३, ७३२, ७३८, ७५०, ७६१, ७६७, ७७०, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७८, ७७९, ७८३, ७८९, ७९०, ७९१, ७९४, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८०१, ८०७, ८११, ८१६, ८१९, ८३८, ८७०, ९४५, ९९८, ९९९, १०२६, १०३४, १०५५, १०५७, १०६९, १०७२, १०७६, १०८४, ११३५, ११६४, १२३६, १२६३, १२६७, १३७१, १४०३, १४२६

१९६६

१७२, १७५, १८६, २२८, २३१, २८३, २८४, २८५, २८६, २९४, ३७७, ३९२, ४०६, ४६२, ६२०, ६२५, ७१८, ७४७, ७५५, ७८०, ८१४, ८१५, ८२५, ८२६, ८२८, ८८५, ८९७, ९०७, ९३५, १०९२, ११६३, ११६६, १२०७, १२३१, १२४१, १२६८, १२७०, १२७४, १३१२, १३२१, १३२२, १३२३, १३२४, १३२५, १३२६, १३२८, १३२९, १३४१, १३४२, १३४३, १३४७, १३५९, १३७३, १३८२, १३८३, १३८४, १३८६, १३८७, १३८९, १३९०, १४०४, १४१३, १४२०, १४२२, १४२३, १४४४, १४४८, १४६४, १४६७, १४६९, १४७६, १४८१, १४८५, १४८६, १४९३, १४९७, १४९९, १५१४, १५१६, १५३४, १५३७, १५३९

१९६७

४, ६७१, ७२८, ७६०, ८३३, ८३९, ८४१, ८४२, ८४८, ८९८, ९४६, ९५०, १०८५, १०८८, १११८, १२०९, १२५५, १३१६, १३३०, १३६१, १३७७, १४३०, १४९१, १४९४, १५२६, १५३२

१९६८

३, ६, १०, ११, १९, २२, ३४, ३८, ९४, ९८, १५६, १५८, १७९, १८०, १८१, १९३, १९४, १९५, २२६, २२९, २५०, २७२, २७७, ३१०, ३१३, ३१४, ३३१, ३४९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३९१, ३९७, ४३६, ४३८, ४५२, ४५३, ४५९, ४६०, ४६५, ४६७, ४६९, ४७१, ४७३, ४७४, ४८१, ४८३, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९२, ४९६, ५०३, ५११, ५१३, ५१६, ५१९, ५३१, ५४२, ५४६, ५४८, ५६१, ५६७, ५७१, ५७२, ५७३, ५५१, ५८२, ५८४, ५८६, ५८७, ५८८, ५९१, ५९३, ५९५, ५९६, ५९७, ५९९, ६१९, ६२२, ६२८, ६३०, ६३२, ६३७, ६४२, ६४५, ६५२, ६५३, ६५६,

६६३, ६६७, ६८५, ६९९, ७०१, ७१४, ७२१, ७३३, ७३४, ७३६, ७५६, ७६५, ८२२, ८५५, ८५६, ८६७, ९१२, ९२०, १००३, १०१५, १०७०, ११२०, ११२८, ११३३, ११३४, ११३६, ११७८, ११९१, ११९६, १२६६, १२७२, १२९०, १३३७, १३५५, १३७२, १४१०, १४११, १४१४, १४४०, १४४५, १४८९, १५५७, १५६५

१९६९

३३, ९५, १५४, १६१, २१६, २५८, ४९९, ६८२, ६९७, ७५३, ७८७, ८३७, ८६३, ८६९, ८८८, ९६९, ९७८, ९८०, ९८३, १०५३, १०५८, १०७७, ११०७, ११५४, ११५९, ११६७, १२६२, १२७३, १२७६, १३०४, १३०७, १३०८, १३०९, १३११, १३१५, १३३३, १३४०, १३५२, १३५३, १३५८, १३६६, १३६८, १३७०, १३७८, १४०१, १४२७, १४३५, १४३६, १४४७, १४५५, १४५९, १४७०, १४७१, १४७२, १४७३, १४७४, १४७५, १५१८, १५२३, १५२९, १५३१

१९७०

३१, ६१, १०८, २०६, २२५, २५४, २६१, २९२, ४१६, ४६६, ५०१, ५७४, ७४१, ८२७, ८२९, ८६०, ८८१, ८८७, ९०३, ९१८, ९३८, ९५८, ११७२, १२९३, १३१३, १३३४, १३४६, १३४८, १३४९, १३९२, १३९३, १३९४, १३९५, १३९६, १३९७, १४६३, १५३३

पता नहीं लगा

२१, ३७, ३९, ४४, ४६, ५७, ५८, ७२, ७३, ७७, ८१, ८६, ८८, ९०, ९१, ९३, १००, १०३, १०९, १११, ११८, १३७, १६२, १६४, १६८, १६९, १७०, १७१, १७४, १८५, १८७, १८८, १९२, २००, २०३, २०४, २०५, २१०, २१४, २१५, २१९, २३२, २३५, २३८, २३९, २४२, २४३, २५५, २७३, २७४, २७५, ३००, ३०८, ३११, ३२२, ३२३, ३२६, ३२७, ३२८, ३४२, ३५१, ३५४, ३५६, ३६४, ३६५, ३६६, ३६८, ३७१, ३७३, ३७५, ३७६, ३८०, ३८१, ३८२, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४१०, ४११, ४१९, ४४१, ४४४, ४४७, ४५७, ४७५, ४७९, ४९०, ४९३, ४९५, ४९७, ५००, ५२५, ५३४, ५३७, ५३८, ५४९, ५५८, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५७६, ५७७, ५७९, ५८५, ५९०, ५९२, ५९४, ५९८, ६००, ६०१, ६१८, ६२४, ६३३, ६३८, ६४०, ६४१, ६४९, ६५१, ६६५, ६६६, ६७६, ६७९, ६८०, ६८१, ६८४, ६८५, ६८७, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ७०३, ७०४, ७०७, ७०८, ७१०, ७११, ७१२, ७१५, ७१६, ७२०, ७२५, ७२६, ७३१, ७३९, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४७, ७४८, ७५०, ७५१, ७६३, ७६४, ७६५, ८२३, ८३६, ८४९, ८५०, ८६१, ८७३, ८७५, ८७६, ८८३, ९०४, ९०६, ९०८, ९२५, ९२६, ९३४, ९३९, ९४२, ९४९, ९५२, ९५६, ९५७, ९५९, ९६१, ९६५, ९६८, ९७३, ९७७, ९८१, ९९६, १०००, १०२१, १०३०, १०३१, १०३२, १०३६, १०४२, १०४९, १०५१, १०६०, १०६३, १०६४, १०६५, १०६६, १०६७, १०६८, १०७१, १०७३, १०७४, १०७९, १०८०, १०८१, १०८३, १०८६, १०९३, १०९४, १०९५, १०९६, ११०४, ११०८, ११०९, १११२, १११३, १११४, १११६, १११७, १११९, ११२१, ११२२, ११२३, ११२५, ११२९, ११३०, ११३२, ११३७, ११३८, ११४०, ११४१, ११४३, ११४९, ११५२, ११५३, ११५६, ११५७, ११५८, ११६८, ११६९, ११७०, ११७१, ११७३, ११८५, ११९०, ११९२, ११९३, ११९८, १२०१, १२०३, १२०५, १२०६, १२१४, १२१६, १२१७, १२१८, १२१९, १२२०, १२२१, १२२२, १२२३, १२२४, १२२५, १२२६, १२२७, १२२८, १२२९, १२३०, १२३२, १२३८, १२४५, १२४६, १२४८, १२५१, १२६१, १२६५, १२७१, १२७७, १२७८, १२७९, १२८०, १२८३, १२८५, १२८६, १२९२, १२९४, १२९५, १२९६, १२९८, १३००, १३०५, १३०६, १३१०, १३१४, १३१८, १३३२, १३३६, १३४४, १३४५, १३५०, १३५४, १३६०, १३६३, १३६४, १३६७, १३७४, १३७६, १३७९, १३८१, १३८५, १४०५, १४०७, १४०९, १४१७,

१४२८, १४३३, १४४६, १४५६, १४५८, १४६१, १४६५, १४६८, १४८२, १४८३, १४८४, १४९०, १४९२, १४९६, १५०२, १५०३, १५०५, १५०६, १५०७, १५१०, १५१३, १५२८, १५३५, १५३६, १५४१, १५४८, १५४९, १५५०, १५५१, १५५२, १५५३, १५५४, १५५५, १५५६, १५५८, १५५९, १५६३

****

(२८)

पद-रत्नाकर पर सम्माननीय विद्वानोंके विचार

(१) डॉ० रामकुमार वर्मा— 'पद-रत्नाकर'की प्रति प्राप्त हुई। इस अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार-बार पढ़कर सूरदासकी काव्य-मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है। भाईजी कितने बड़े भक्त कवि थे—यह 'पद-रत्नाकर' को पढ़कर आज ही ज्ञान हो सका।

(२) पं०श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़— परमश्रद्धेय श्रीयुत भाईजीका जीवन प्रारम्भसे ही साधनामय था। कार्य करते-करते उन्हें समाधि लग जाया करती थी, जो घण्टों बनी रहती थी। 'पद-रत्नाकर' ऐसे ही अधिकारी पुरुषके सरस हृदयका छलकता हुआ अवदान है। इस ग्रन्थके 'श्रीराधा-माधव-स्वरूप-माधुरी' एवं 'श्रीराधा-माधव-लीला-माधुरी' ये दो प्रकरण अद्भुत अनुभूतियोंसे भरे हैं। इनका वर्णन तो वही कर सकता है, जिसे भगवान्‌की दिव्य लीलामें प्रवेश प्राप्त हो। पुस्तकका कण-कण व्रजरसके आस्वादसे भरपूर है। इस कराल कालमें इस पुस्तकका प्रसार मिटती मानवताके लिये सञ्जीवनीका काम कर सकता है।

(३) डॉ० प्रभुदयाल मीतल— परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवन-व्यापी सारस्वत साधनाने इस जगत्‌के जीवोंका कितना कल्याण किया है, यह सर्वविदित है। किंतु उनकी साधना काव्य-क्षेत्रमें भी इतनी प्रशस्त थी, इसका ज्ञान अधिक व्यक्तियोंको नहीं है। मैंने श्रद्धेय भाईजीकी कुछ काव्य-कृतियोंका पहले रसास्वादन किया था, किंतु उन्होंने इतने विपुल परिमाणमें काव्य-रचना की थी, इसका परिज्ञान मुझे इस 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थसे ही हुआ है। ××× इनका गायन एवं वाचन दिव्य वातावरणकी अवतारणा करनेमे समर्थ है। मुझे इनसे जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसका उल्लेख शब्दों द्वारा करना सम्भव नहीं है। मैंने इसे श्रीभाईजीकी वाङ्मयीसाधनाके प्रसादरूपमें ग्रहण किया है।

(४) प्रभुपाद प्राणकिशोरजी गोस्वामी—परमश्रद्धेय भाईजीकी स्मरणीय पद-रत्नावली एक अनोखी रचना है। इस ग्रन्थके पाठ साधकोंके लिये त्याग, वैराग्य, ज्ञान और भक्तिके समन्वय साधनके लिये लोकातीत आदर्श हैं। इसीमें दास्य-भाव, विनय, प्रार्थना, शरणागतिके मार्गमें स्वाभाविक भावसे समाकृष्ट करनेके सिद्ध मन्त्र पाये जाते हैं।

(५) पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज—पूज्यपाद सद्गत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार प्रभुके धामसे आये थे। अनेक जीवोंका जीवन सुधारनेके लिये श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन-रूप 'पद-रत्नाकर' प्रभुकी प्रेरणासे भगवद्भावभावित अन्त:करणसे निकली हुई उनकी दिव्य वाणी अमृतरूप है। मैंने उसका अध्ययन किया और अपार आनन्दका अनुभव किया। उसी प्रकार साधक लोग 'पद-रत्नाकर'का चिन्तन, पठन, मनन करके दिव्य आनन्दका अनुभव करेंगे, ऐसी श्रद्धा है।

(६) डॉ० विजयेन्द्र स्नातक— मै यह कल्पना नहीं कर सकता था कि भाईजी तीन भाषाओंपर समान अधिकार रखते हुए इतना उच्च भाव-पूर्ण साहित्य सृजन कर सकते थे। यह 'पद-रत्नाकर' एक श्रेष्ठ भक्त कविकी पूर्ण संवेदनशील अभिव्यक्तिकी द्योतक रचना है। मैंने हिन्दी साहित्यके भक्तिकालीन कवियोंकी रचनाएँ पढ़ी हैं, उनका विवेचन-विश्लेषण भी किया है, कुछ अनुसंधान भी किया है। मैं अपने अल्प ज्ञानके आधारपर कह सकता हूँ कि भाईजीका यह पद-साहित्य इस श्रेणीके कवियोंसे किसी भाँति कम नहीं है। वरन् इसकी विशेषता तो भाषात्रयका एकत्र समाहार है। खड़ी बोलीमें इतना सरस, भावपूर्ण भक्ति-साहित्य मेरे देखनेमें नहीं आया है।

(७) डॉ० सियाराम सक्सेना—यह ग्रन्थ काव्य और संगीत दोनों ही कलाओंकी एक ललित, मधुर उपलब्धि है और इसका 'पद-रत्नाकर' नाम सर्वथा सार्थक है। 'सूर-सागर'के पश्चात् 'पद-रत्नाकर' हिन्दीकी दूसरी अमूल्य गीति-निधि है। 'सूर-सागर' कृष्णाश्रयी है, 'पद-रत्नाकर' राधा-माधव उभयाश्रयी। यह व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनोंका गौरव-ग्रन्थ है।

भाईजीने राधा-कृष्णके दिव्य प्रेमको पूर्णतया मर्यादानिष्ठ मधुर-रूपमें चित्रित किया है। सीताराम-प्रेमको जिस महिमा-मंडित आदर्श रूपमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने प्रस्तुत किया था, वैसे ही भाईजीने राधा-कृष्ण-प्रेमको सम्पूर्ण गरिमाके साथ अंकित किया है। 'पद-रत्नाकर' भगवद्भक्तोंका ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी प्रेमियोंका गलहार बनेगा-यह निश्चित ही है।

(८) डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'—मेरे विचारमें लाखोंमें कोई एक ही श्रीराधा-माधव भक्ति रहस्यका समझनेका अधिकारी होता है। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका काव्य-संग्रह 'पद-रत्नाकर' श्रीराधा-माधवकी भक्तिपर लिखनेवाले लेखकों तथा कवियोंको एक नयी दिशा-नया दृष्टिकोण प्रदान करेगा, जिसका हिन्दी साहित्यमें अभाव था। हिन्दीमें श्रीराधा-माधवके सम्बन्धमें विशाल काव्य रचना हुई है और

होती रहेगी पर जैसा उज्ज्वल मर्यादित प्रेमका चित्रण इस ग्रन्थमें हुआ है उसका स्थान अनूठा ही है। श्रीपोद्दारजीके इस ग्रन्थसे जैसा मैं लाभान्वित हुआ हूँ, वैसे ही और सहस्त्रों लोग होंगे।

(९) डॉ० अवध बिहारी लाल कपूर—उनके (श्रीपोद्दारजीके) पदोंका ऐसा विशाल संग्रह हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। 'कल्याण'के सम्पादन और अनेक पुस्तक-पुस्तिकाओंके लेखनमें निरवधि संलग्न रहते हुए भी वे इतने सारे व्यवहार और परमार्थके आदर्श-सूचक, तत्त्व-कथा-पूर्ण और भक्ति-भाव-प्रेरक बहुमूल्य पदोंकी रचना कर सके, इससे जान पड़ता है कि उनका जीवन कितना समर्पित, कितना सरस और संगीतमय था। लगता है कि जैसे उनके श्वास-प्रश्वासमें उनके भक्ति-रस रंजित हृदयसे पदोंका स्वतः स्फुरण होता था। इन्हें 'तुकबंदियाँ' न कहकर 'महावाणी' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

(१०) डा० रामचरण महेन्द्र—भारतके नैतिक उत्थानकी दिशामें अनेकों पुस्तकें लिखी गयी हैं और लिखी जायेंगी किन्तु 'पद-रत्नाकर' जैसी मौलिक, स्थायी महत्वकी काव्यकृति किसी भी देश और कालमें बहुत कम प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तकके प्रणेता कोई साधारण कवि नहीं, वरन् ऐसे काव्यस्त्रष्टा और युगद्रष्टा हैं जिन्होंने अपनी रचनाओंसे भक्ति-साहित्यके एक युगका निर्माण किया है। 'पद-रत्नाकर' भक्ति-काव्यके क्षेत्रमें अभिनन्दनीय प्रयास है। ××××

(११) श्रीरामनाथ सुमन—व्रज भाषा और खड़ी बोलीके उनके सैकड़ों पद हैं, जो उनके अन्तर्मार्दवसे ओत-प्रोत और उल्लसित है। कविकी दृष्टिसे भी श्रीभाईजीका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सम्पादनमें शायद ही दो-एक नाम उनके साथ रखे जा सकें। लेखकके रूपमें कठिन विषयको सुबोध शैलीमें समेट लेनेके तो वे आचार्य ही थे। देश-भक्तिमें वे बहुत आगे थे और राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथ-दर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। ऐसे व्यक्तिके विषयमें, जिसका अधिकांश अतल सागर-गर्भमें बहते हुए 'आइस-बर्ग' की भाँति संसारकी दृष्टिसे ओझल है, लेखनी क्या लिखेगी? वाणी क्या प्रकट करेगी?

(१२) श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज—जैसे हिन्दी-साहित्याकाशके सूर्य श्रीसूरदासजीके पदोंका समुदाय सूर-सागर कहलाता है, उसी प्रकार भजन-गगनके विमल विभाकर श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके पदोंके समुदायका 'पद-रत्नाकर' के रूपमें नामकरण युक्तिसंगत है।

यह ग्रन्थ एक उत्कृष्ट पद्य-काव्य है। इसका प्रायः प्रत्येक पद स्वतंत्र है,

भाव-द्योतनमें उसे पद्यान्तरकी अपेक्षा नहीं है। प्रत्येक पद पाठ्य तो है ही, साथमें वह गेय भी बना दिया गया है। इस कारणसे इस कृतिमें वह रोचकता आ गयी है जो सुवर्णमें सुगन्धके सम्पर्कसे आ जाती है। पद-रत्नाकरका प्रत्येक पद एक अनुपम रत्न है, सर्वथा रमणीय है और रसराज श्रीभगवान्‌के प्रति प्रेमको जगानेवाला है।

(१३) डॉ० तपेश्वरनाथ—पद-रत्नाकरमें श्रीपोद्दारजीकी उदात्त कवित्व शक्तिका प्रमाण मिलता है। यों तो हिन्दी साहित्यमें राधा भावपर अनेक काव्य, आलोचना और शोध ग्रन्थ लिखे गये पर श्रीपोद्दारजीके इस ग्रन्थमें विवेचित एवं रचित राधापरक काव्य साहित्य हिन्दीकी अमूल्य सम्पदा है, अपर विभूति है। इस तथ्यका मूल्यांकन अभी हिन्दी जगत्‌में ठीक-ठीक हुआ भी नहीं है।

(१४) डॉ० उमाकान्त 'कपिध्वज'—श्रीपोद्दारजी प्रेमकी सर्वोच्च स्थिति 'महाभाव'को बहुत पहले प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पदकी अनिर्वचनीय और अचिन्त्य स्थितिका जो वर्णन किया है, वह उनका स्वयंका, उस सर्वोच्च स्थितिपर पहुँचकर प्राप्त अनुभव है जिसे उन्होंने विशेष कृपाके साथ भगवत्प्रेमी भक्तोंके हितार्थ प्रस्तुत किया है। असीम अनुभूति, परिष्कृत चिन्तन, विस्तृत परिधि, अतल गहराई और उत्कृष्ट शिल्पका द्योतक, अध्यात्म तथा रहस्याभाससे आपूर्ण, व्यापक करुणा एवं संवेदनासे सिंचित, साधनाके अखण्ड विश्वासको लिये श्रीपोद्दारजीका काव्य संग्रह 'पद-रत्नाकर' हिन्दी साहित्य तथा आध्यात्मिक जगत्‌को उनकी अत्यधिक महत्वपूर्ण देन है।

(१५) डॉ० शुकरत्न उपाध्याय—व्रज-रस एवं प्रेम तत्त्वसे संबंधित पद इस 'पद-रत्नाकर' के प्राण हैं, जिनमें प्राणोंतक बेधती हुई गहन अनुभूतियों एवं सैकड़ों भावभंगियोंसे इस चिन्मय रसके गहन रहस्य अन्तरतममें प्रेमका उज्जवल प्रकाश फैला देते हैं। श्रीराधाकृष्ण तथा गोपियोंकी प्रेम-कथाके अनेक अनूठे एवं दुर्लभ भावरत्न इस संग्रहमें भरे पड़े हैं, कर्तव्यपथसे भटकते हुए लोगोंको व्यवहार और परमार्थके अनेक मार्गदर्शक सन्देश भी 'पद-रत्नाकर'से प्राप्त हो सकते हैं। विज्ञान और राजनीतिके पास मनुष्यको श्रेष्ठ बनानेकी कोई योजना नहीं है, इस ग्रन्थका स्वाध्याय उसके भावोंको परिष्कृत करने, श्रेष्ठ और सच्चा मनुष्य बनाने तथा जीवनको आनन्दसे भर देनेमें अवश्य सहायक होगा।

(१६) श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास—श्रीपोद्दारजीके शाश्वत लीला परिकरसे जुड़े होनेकी सबसे बड़ी प्रतीति उनके पद-रत्नाकरसे होती है। पद-रत्नाकरमें न जाने

कितने पद ऐसे हैं जिनका पठन और चिन्तन करते समय तुलसी, सूर, कबीर, रहीम, रसखान आदि श्रेष्ठ भक्त-कवियोंका बार-बार स्मरण हो आता है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रेरणा और भक्तिका स्त्रोत सबका एक ही है। इसलिये भक्तोंकी अनुभूतियों और उनके जीवनके गुण बहुत कुछ समान हो जाते हैं।

(१७) डॉ० सुरेश सेठ—'पद-रत्नाकर' संकलन भक्तके व्यक्तित्वका जीता जागता व्याख्यात्मक दर्पण है, जिसमें पद्यात्मक भावनाओंके माध्यमसे श्रीभाईजीका भक्त हृदय काव्यात्मक रूपमें प्रस्फुटित हुआ है। साधकोंके लिये यह संग्रह प्रेरणाका एवं पूजाकी वस्तु रहेगा, जिसके रत्नकणोंको चुन-चुनकर भविष्यमें अन्य साधक अपना भी कल्याण कर सकेंगे। श्रद्धेय श्रीभाईजी द्वारा विरचित पदोंका यह संकलन मुझे तो आत्माकी पुकार-सा लगता है।

(१८) डॉ० वासुदेव सिंह—'पद-रत्नाकर' गीताप्रेससे प्रकाशित होकर भावी पीढ़ीकी अनन्तकाल दिशा-निर्देश करता रहेगा। यह वस्तुत: रत्नोंका आगार है और सूरदासके समान लोकरंजक प्रभु श्रीकृष्णकी लीलाओंका अथाह वारीश है।

(१९) डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'—तत्वमनीषी एवं कविप्रवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके मुक्तक काव्य संकलन 'पद-रत्नाकर' को पढ़कर मैं रस-विभोर हो उठा। हिन्दी साहित्यमें राधा और कृष्णके प्रणयात्मक चिद्विलासको शृँगारी कवियोंने जो मांसलता और पार्थिवता दी उससे व्रजरस वासनाके पंकमें तिरोहित हो उठा था। श्रीपोद्दारने उस पंकिलताको तिरोहित करके श्रीराधा-कृष्णकी प्रणयलीलाको चिन्मयी रसवत्ताका अपने काव्य द्वारा भक्तोंको अन्तर्साक्षात्कार कराया।

(२०) डॉ० श्यामसुन्दर घोष—'पद-रत्नाकर'में विनय और शील, श्रद्धा और समर्पण अपने आपमें इतने मार्मिक और प्रभावकारी हैं कि आधुनिक युगके द्वन्द्व संशयग्रस्त किसी व्यक्तिके हाथोंमें यह पद-रत्नाकर थमा दीजिए तो वह यह भूल जायगा और इस कविता कादम्बिनीके साथ किसी अपरलोकमें इस प्रकार विहार करने लगेगा कि उसे आनन्द, करुणा और शिवत्व एक दूसरा ही लोक भासमान होने लगेगा।

(२१) डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित—'पद-रत्नाकर'में श्रीभाईजीकी दृष्टि ऐसे अनेक स्थलों और घटनाओंपर भी गयी है जिनका चित्रण पहले नहीं हुआ। राधा-माधवकी स्तुतिमें भगवती राधा परमश्रेय सम्पन्न होकर उपस्थित हुई हैं, जिनके प्रति अनेक पद निवेदित हुए हैं। इन पदोंमें कभी दास्यभावकी व्यंजना होती है और

कभी सख्य तथा माधुर्य भावकी। कभी इनमें भक्तका नारी भाव उपस्थित हो जाता है, कभी सीधा-सादा पुरुष भाव बना रहता है। दैन्य और आत्मदर्शनके साथ समर्पणका भाव इन पदोंको सूर, तुलसी और मीराके पदोंकी कक्षामें प्रवेश करा देता है। इनमें सूरकी सहज पदावलीके साथ तुलसीकी संघटित सामायिक पदावलीका भी दर्शन होता है और मीराकी सहज माधुरी इसमें रस भरती है।

(२२) आचार्य देवानन्द गौड़—'पद-रत्नाकर' भाईजीकी एक अद्भुत रचना है। कविने अपने गहरे अध्ययन और विस्तृत जीवन-दर्शनके आधारपर अध्यात्मके उच्चतम दार्शनिक तथ्योंको सरल भाषा और बोधगम्य शैलीमें दिग्दर्शन कराया है। रत्नाकरके रचयिताका अन्तर्हृदय, वैयक्तिक जीवन ही मुखरित नहीं, अपितु मध्यकालीन राधा माधवके चिद्विलासकी सभी भूमिकाएँ भक्तके साामने प्रत्यक्ष हो जाती है।

(२३) डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त—'पद-रत्नाकर'के पदोंमें एक विशेष सत्व संप्रेषित होता है—अनुभूतिकी सच्चाई। भक्तिकालके महामहिम कवियों तककी अनेक अनुभूतियाँ ऐसी मिल जाती हैं जहाँ हम उनके साथ डूब नहीं सकते। किनारे बैठकर भोक्ताकी अपेक्षा द्रष्टा अधिक हो जाते हैं। किंतु पोद्दारजीकी अनुभूतियोंमें हम सहभागी होकर साथ-साथ डूबते-उतराते हैं। शायद इसलिये कि वे हमारे युगके हैं। पर अनुभूतिकी सच्चाईके बिना यह सम्भव न हो पाता। आज तो यह सच्चाई दुर्लभ हो उठी है।

(२४) डॉ० तारिणीश झा—'पद-रत्नाकर' ग्रंथ निःसंदेह भाईजीको सूर, तुलसी आदि महान सन्त कवियोंकी परम्परामें बैठा देगा। प्रस्तुत काव्यमें निहित यत्र-तत्र अनूठी पद-संयोजना एवं सुमधुर भावना भावुक भक्त-जनोंको आनन्द विभोर किये बिना नहीं रह सकती। काव्य कलाकी दृष्टिसे इसका परिशीलन करनेपर यह उच्च कोटिका काव्य-ग्रन्थ प्रमाणित होता है।

(२५) डॉ० पारस नाथ तिवारी—'पद-रत्नाकर' में भाईजीके डेढ़ हजारसे कुछ अधिक पदोंका संग्रह है। जिन्हें विविध रंग-रूप और मूल्यके रत्न ही समझना चाहिये। ये पद भाईजीके सहज व्यक्तित्व और उनकी ज्ञानगरिमाके परिचायक हैं। उनकी यशोलिप्साहीनताका इससे बढ़कर क्या उदाहरण हो सकता है कि उन्होंने इन पदोंमें अपने नामकी छाप भी नहीं रखी।

(१९)
पद-रत्नाकर पर शोध-प्रबन्ध

पद-रत्नाकर पर अबतक तीन शोध प्रबन्ध लिखे गये हैं। इनमें प्रथम है—कु० वी० कमलम्मा द्वारा किया गया 'श्रीभाईजीकी पद्यात्मक रचनाओंका आलोचनात्मक अध्ययन—पद-रत्नाकरके विशेष संदर्भमें'। यह शोध प्रबन्ध वर्ष १९८९ में मैसूर विश्वविद्यालयके डा० एन०एस० दक्षिणामूर्तिके निर्देशनमें पूरा किया गया।

इस शोधमें कहा गया है कि पद-रत्नाकर गीति शैलीमें रचित ग्रन्थ है। इसमें गीति शैलीके प्राण तत्त्व आत्माभिव्यंजना भरी है। इसमें गीति शैलीके भेद कहलानेवाले—शुद्ध गीति शैली, आख्यानात्मक गीति शैली एवं वर्णनात्मक गीति शैली विद्यमान है। मार्मिक वाक्यांश, मुहावरे और लोकोक्तियाँ पद-रत्नाकरमें भरपूर मिलते हैं जो इसकी भाषाको प्रौढ़ता प्रदान करते हैं जैसे—**'लोभीके धनकी ज्यों श्याम'** (पद सं० ९०४), **'जरे घावपर नौन लगावत पढ्यौ तुमहि धतूरे** (पद सं० ३२१)', **'जैसा बोओगे बीज मिलेगा वैसा'** (पद सं० १४०५), **'भेड़ खालमें भेड़िये छाये सब संसार'** (पद सं० १४४१)

इसमें श्रीमद्भागवत, सूरसागर और पद-रत्नाकरकी तुलना करते हुए लिखा गया है कि इन तीनोंमें विषमता रहते हुए भी इनका मूल स्रोत अथवा अन्त:सत्त्व एक ही है। वह है 'भक्तिका प्रतिपादन' और 'मानव कल्याणकी महती भावना'। पद-रत्नाकरका साहित्यिक दृष्टिसे मूल्यांकन करते हुए लिखा गया है—

आदिकालसे आधुनिककाल तक भक्ति धारा भारतीय साहित्यमें देवनदी गंगाकी तरह प्रवाहित है। बीच-बीचमें इस धाराके बहनेमें कुछ बाधा पड़नेपर, कोई-न-कोई भक्त कवि उस रास्तेको साफ करके बहनेमें उसकी मदद अवश्य करते आये हैं। आधुनिक कालमें जनता भारतीय आध्यात्मिक धर्मको भूलकर अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृतिके रंगमें रंजित होकर पथभ्रष्ट हो गयी है, तो श्रीभाईजीका पद-रत्नाकर संसार-सर्पद्रष्टोंके लिये कृष्णमंत्रके सदृश्य काम कर रहा है। पद-रत्नाकर समाजके हर एक व्यक्तिके कर्तव्यको बताता है, उन्हें कर्तव्योन्मुख होनेमें मदद दिलाता है, साधकोंको पथ दर्शन देता है, मुमुक्षुओंका मार्ग सगुणोपासना ही है, उसमें भी पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्णके लीलागानसे वह सफल होता है, ऐसा ज्ञान प्रदत्त करता है। इतना ही नहीं काव्यरसिकोंके लिये रस-पान भी कराता है।

पद-रत्नाकर भक्ति जगानेवाला धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं एक सफल काव्य भी है। साहित्यिक दृष्टिसे भी इसका स्थान ऊँचा है। यह काव्यके कलापक्ष और भावपक्ष दोनों दृष्टियोंसे समृद्ध महान कृति है। इसके पद फुटकर रचना पद्धतिके होकर अपनेमें पूर्ण हैं। अतएव इसमें कथात्मक व्यवस्था नहीं है। मुक्तक परंम्पराकी गीति शैलीमें रचित यह कृष्ण काव्य बीसवीं शताब्दीकी अमरकृति है। श्रीमद्भागवत तथा सूरसागरसे प्रभावित कविने श्रीराधा-माधवकी लीलागानमें अपनी मौलिकता भी दिखायी है। वेदोपनिषद, नाना पुराण, नारदभक्तिसूत्र आदि महान् ग्रन्थोंके आधारपर रचित यह ग्रन्थ किसीका अनुवाद या अनुकरण नहीं है। कविने अपने साहित्यिक ज्ञान तथा लौकिक अनुभवके पाकसे पदोंको रचा है। प्रतिपाद्य विषयानुसार इनके पदोंको कुछ शीर्षकोंमें रखा गया है, वे इस प्रकार हैं—१. राधा-माधव लीला संबंधी, २. नाम माहात्म्य, ३. हरि-गुरु-महिमा वर्णन तथा जयगान, ४. आत्मनिवेदन, ५. वैराग्य संबंधी, ६. श्रीमद् भगवद्गीताके विविध प्रसंग, ७. आरतिके गीत, एवं ८. समाजकी आलोचना तथा समाजका प्रबोध।

भक्ति-रस इस ग्रन्थका अंगीरस होते हुए भी अन्य रसोंका सुंदर पाक भी इसमें है। विविध अलंकारोंसे भूषित व्रज, खड़ी बोली और राजस्थानी भाषाका संगम है इस ग्रन्थमें। तीनों भाषाओंके ठेठ शब्दोंके साथ संस्कृतके तत्सम, तद्भव तथा विदेशी भाषाओंके शब्द इसमें संपन्न हैं। पूर्ववर्ती अध्यायोंमें इस ग्रन्थके काव्य स्वरूप, भाषा-शैली, रस और अलंकार, प्रमुख तथा गौण पात्र आदिके विषयमें विशद रूपसे चर्चा है। जिससे इसका साहित्यिक मूल्यांकन स्पष्ट होता है।

निष्कर्षके रूपमें कहा जाता है कि सरस, सरल, सुबोध शैलीमें रचित यह कृष्ण-भक्ति काव्य पंडित-पामर सबको अनुरंजित करनेमें सफल हुआ है।

श्रीपोद्दारजीका हिन्दी साहित्यमें स्थानका वर्णन करते हुए लिखा गया है— भक्ताग्रगण्य महात्मा श्रीपोद्दारजीका 'पद-रत्नाकर' आधुनिक हिन्दी साहित्यकी अमूल्य निधि है। एक ऋषि कविकी गरिमामय तपः साधनाके रूपमें, रसके आगारके रूपमें, कीर्तन काव्यके रूपमें, भक्ति रसायनके रूपमें पद-रत्नाकरकी गणना की जाती है। इसकी यशोदीप्ति उसके कविके महान् व्यक्तित्वको अनंत कालतक दीप्ति रख सकती है। इसमें शृंगारके वर्णनमें पवित्रताको रखकर राधा-माधव संबंधी मिथ्या भ्रमको दूर किया गया है। श्रीभाईजीका ग्रंथ विभिन्न राग-रागिनियोंका अमूल्य भण्डार है।

पद-रत्नाकर भाईजीके व्यापक अध्ययन, गम्भीर चिन्तन और गहन रसानुभूतिका परिणाम है। तीन भाषाओंपर समान अधिकार रखते हुए ऐसे भाव पूर्ण साहित्यका

सृजन उनकी विशेषता है। खड़ीबोलीमें इतना सरस, भावपूर्ण, भक्तिकाव्य अब तक देखनेको नहीं मिला था।

व्रज भाषाके कृष्ण प्रणेताओंके काव्योंमें 'सूरसागर' का जो स्थान है वही स्थान खड़ी बोली काव्योंमें पद-रत्नाकरको मिलना चाहिये।

श्रीभाईजीने राधा-कृष्णके दिव्य प्रेमको पूर्णतया मर्यादानिष्ठ मधुर-रूपमें चित्रित किया है। सीताराम-प्रेमको जिस महिमा-मंडित आदर्श रूपमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने प्रस्तुत किया था, वैसे ही श्रीभाईजीने राधा-कृष्ण प्रेमको सम्पूर्ण गरिमाके साथ अंकित किया है। 'पद-रत्नाकर' भगवद भक्तोंका ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी प्रेमियोंका गल-हार बनेगा—यह निश्चित ही है।'

श्रीभाईजीकी रसवती लेखनीसे श्रीराधा-माधव संबंधी भक्तिकी काव्य सरिता ही नहीं सुबोध शैलीके अपार गद्य साहित्य भी निःसृत हुआ है। इसके अलावा गीताप्रेसके द्वारा कल्याण पत्रिकाके माध्यमसे उन्होंने हिन्दी साहित्यकी जो सेवा की है, वह अनुपम है जिससे भारतीय संस्कृतिका पुनरूत्थान हो गया। कल्याणके सम्पादनके द्वारा भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, शास्त्र-ग्रन्थों और पुराणों आदिमें जो सनातन मूल्य था उसका प्रचार और प्रसार सहस्त्रों नर-नारियोंमें किया गया है। जिससे भारतीयोंमें नवीन आस्था, स्फूर्ति और जीवन आदर्श जागृत हुआ। भारतकी सारी परंपराको हिन्दीमें लाकर जन-समुदायको सुलभ कर दिया गया है। लोग जिन प्राचीन पुराणों और महान् ग्रन्थोंका केवल नाम सुने थे, भाईजीके परिश्रमसे वे ग्रन्थ हिन्दी भाषाके माध्यमसे उनके हाथमें आ गये।

इस तरह श्रीभाईजी महाकविके रूपमें, सफल संपादकके रूपमें, गद्य लेखकोंके आचार्यके रूपमें, एक सच्चे देश भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथदर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। मानव कल्याणकी महती भावनासे भाईजी ५० वर्ष तक हिन्दी साहित्यकी सेवा ही न की कल्याण और कल्याण कल्पतरुके द्वारा भगवद् विषयको देश और विदेशमें उन्होंने जो फैलाया है उससे वे हिन्दी साहित्यमें ही क्यों विश्व साहित्यमें स्थान पाने योग्य व्यक्ति हैं।

श्रीभाईजीने सफल संपादकके रूपमें, महाकविके रूपमें, श्रेष्ठ लेखकके रूपमें हिन्दी साहित्यकी जो सेवा की है, उससे हिन्दी साहित्यका गौरव बढ़ा है।

इस विषयमें डा० भगवती प्रसाद सिंहका यह अभिप्राय सूक्त दीखता है— 'श्रीपोद्दारजीका साहित्य इतना विशाल एवं बहुमुखी है कि इस लघु प्रयासके माध्यमसे उसका पूरा परिचय देना संभव नहीं है।

यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि इस युगको हिन्दी साहित्यके इतिहासमें 'पोद्दार-युग' कहना अधिक समीचीन होगा क्योंकि इन लगभग ५० वर्षोंमें हिन्दी-साहित्यकी जितनी अभिवृद्धि श्रीपोद्दारजीने की, उतनी किसी अकेले व्यक्तिने नहीं की। शायद हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें भी कठिनता हो कि 'कल्याण' के विशेषांकोंका सम्पादक और इतने विशाल साहित्यका निर्माता एक ही व्यक्ति था।'

(२)

दूसरा शोध प्रबन्ध श्रीशैलेष कुमार उपाध्यायने प्रस्तुत किया है। इनका विषय रहा—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार और उनका कृष्ण काव्य।' यह शोध प्रबन्ध सन् १९९७ में राँची विश्वविद्यालयसे सम्पन्न हुआ। इसके निर्देशक थे—डा० त्रिभुवन ओझा। शोधमें श्रीपोद्दारजीके सम्पूर्ण पद्य साहित्यके भाव-पक्ष एवं कलापक्षका गहरा अध्ययन करके निम्न निष्कर्ष निकाला गया है—

इस शोध प्रबंधके प्रथम अध्यायमें पोद्दारजीके जीवन और जीवन दर्शनको आधार बनाया गया है। असाधारण लक्षणोंके साथ जन्म लेकर पोद्दारजीने अपनी दादी रामकौर देवी द्वारा प्रदत्त 'हनुमान बख्श' नामकी सार्थकता सिद्ध की।

बखन्नाथजी द्वारा सदाचार, भजन और भगवानके नाम जपकी शिक्षाको अपना लेने वाले पोद्दारजीको उनके प्रारम्भिक जीवनमें अध्यात्मनिष्ठ सद्गृहस्थ बनानेकी कोशिश की गयी। उनके सम्पूर्ण जीवन चरितको पढ़नेके बाद इस प्रयासकी सफलता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगता। श्रीपोद्दारजीके जीवन-वृत्त और उनके प्रारम्भिक जीवनकी प्रमुख घटनाओंके विश्लेषणसे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वे बचपनसे ही असाधारण गुणोंसे युक्त थे। उनका जन्म ही भगवत् कृपा और संतोंके आशीर्वादसे हुआ था। बादमें श्रीब्रजदासजीसे राधा-तत्वकी प्रधानता युक्त वैष्णवी शिक्षा पाने वाले पोद्दारजीका सम्पूर्ण शेष जीवन श्रीराधा-कृष्णके प्रभावसे ओत-प्रोत रहा। राष्ट्रीय आन्दोलनमें सहभागिताके लिये इन्हें जब बंगालके शिमलापाल नामक स्थान पर रखा गया तो इन्हें एकान्त साधनाका सुअवसर मिला। इस साधनासे प्राप्त भगवत्कृपाने इनके जीवनको अध्यात्म प्रधान बना दिया। उनके आचार और व्यवहारमें, साधना और सिद्धान्तमें सर्वत्र प्रेमका साम्राज्य हो गया।

कुछ पारिवारिक व्यवस्था, कुछ स्वयंके धर्मानुरागी होनेके कारण और कुछ सहज संयोगवश पोद्दारजीको विभिन्न संत, महात्माओंका सानिध्य मिला।

भगवत्स्वरूप संतोंके साथ रहकर एवं भगवद-रससे आह्लादित होकर पोद्दारजीने

सर्वथा कल्याणकारी और मंगलमय धर्म एवं भक्तिको प्रोत्साहित किया। बखन्नाथजी, ब्रजदासजी, हठयोगी संत स्वामी शंकरानन्द आदिकी संगतिने इनके जीवनपर एक अमिट छाप छोड़ी। इनके निःस्वार्थ धर्मसेवाको माँ आनन्दमयीका पूर्ण समर्थन प्राप्त होता रहा। इसी क्रममें श्रीअरविन्द घोषने भी इन्हें प्रभावित किया। परवर्ती जीवनमें इन्होंने श्रीघोषको एक महान देशभक्त एवं भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्मका पुरोधा माना।

मैंने पाया है कि पोद्दारजीका सादा जीवन उच्च विचारोंकी आधार शिलापर टिका था। इसलिये धर्म मार्ग पर चलनेवालोंके लिये उनका जीवन और उनके विचार प्रेरक और पथ-प्रदर्शक सूर्यकी भाँति रहे है। उनका हृदय राधाकृष्णके प्रेमरससे सराबोर था और उन्होंने इस भक्ति रसमें स्वयं गोता लगानेके साथ-साथ सम्पूर्ण सनातन धर्मावलम्बियोंको इसका आनन्द दिया। श्रीराधा माधव सदैव उनके हृदय-प्राङ्गणमें क्रीड़ा करते थे और उनके लिये इस क्रीड़ाका अंग बनना और भाव समाधिमें लीन होना सामान्य बात थी। संभवतः इस कारण ही उनके साहित्यमें श्रीयुगल सरकारकी ही चर्चा होती रही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कारोबारी परिवारमें जन्म लेनेके कारण शिक्षासे प्रारंभिक जुड़ाव कुछ विशेष भले न रहा हो, पर स्वाध्यायके बलपर पोद्दारजीने ज्ञानके क्षेत्रमें उन शिखरोंका स्पर्श किया जो कतिपय पढ़े-लिखे ही कर पाते हैं। बचपनमें बखन्नाथजी द्वारा संस्कृतमें गीताके श्लोकोंको कंठस्थ करानेके उपक्रममें पोद्दारजीकी अभिरुचि अध्ययनके प्रति जगा दी। उनकी यह अभिरुचि भारतीय जनमानसके लिये वरदान साबित हुई। जब पाश्चात्य सभ्यता एवं साहित्यका जादू भारतीय समाजपर छाने लगा था तब पोद्दारजीने भारतीय संस्कृति और साहित्यके समर्थ समुद्धारकके रूपमें समाजमें प्रवेश किया और अपना निःस्वार्थ जीवन शिक्षा और संस्कृतिके निमित्त उत्सर्ग कर दिया। शिमलापालकी नजरबंदी इनके स्वाध्यायमें भी सहायक सिद्ध हुई थी और इन्होंने विभिन्न आध्यात्मिक साहित्यके अध्ययन, मनन और चिन्तनका सुयोग पाया था। पोद्दारजीने साहित्य रचनामें सत्साहित्यको ही स्थान दियाा। उन्होंने भाषाको साहित्य न मानकर साहित्यका माध्यम मात्र माना। उनके अनुसार जो साहित्य सभीको समान भावसे कल्याण मार्गपर चलने, तथा सभीका कल्याण करनेकी क्षमता रखता है, वही सत्साहित्य है। पोद्दारजीने अपने सम्पूर्ण साहित्यमें इस सिद्धान्तको बनाये रखा।

पोद्दारजीने समान अधिकारसे पद्य और गद्यकी रचना की। लगभग १०८ हजार पृष्ठका सत्साहित्य समाजको देनेवाले पोद्दारजीके मौलिक साहित्यको विभिन्न

वर्गोंमें रखा गया है। उनका सम्पूर्ण साहित्य इस बातका प्रत्यक्षदर्शी है कि उनके काव्यका अन्तः और वाह्य पक्ष दोनों ही उद्‌बोधक शांति प्रदायक तथा सरस है। उनका सारा लेखन मनुष्यको श्रेयकी ओर ले जानेके निमित्त रहा है। आत्मज्ञानसे प्लावित अलभ्य ग्रन्थोंका प्रकाशन कर उन्होंने समाजका अवर्णनीय उपकार किया है। योगेश्वर श्रीकृष्ण और श्रीराधाको केन्द्रमें रखकर की गयी उनकी पद्यात्मक रचनाओंका अनूठा संग्रह 'पद-रत्नाकर' एक अमूल्य निधि है। खड़ी बोली, ब्रजभाषामें अधिकांश और कतिपय मारवाड़ी भाषामें लिखे गये उनके पद भगवान श्रीकृष्ण और श्रीराधिकाकी लीलामाधुरीके पद ही नहीं वरन् पोद्दारजीकी आत्माकी निश्छल पुकार भी है। विभिन्न राग-रागिनियोंमें सहज रूपसे गेय ये पद कृष्ण भक्ति साहित्यमें सूरदासके काव्यके बाद सर्वाधिक सरस, मधुर और अनुरागमय है।

इस अध्ययन द्वारा यह भी स्पष्ट हुआ है कि पोद्दारजीका रसाद्वैत दर्शन उनके गम्भीर चिन्तन-मननका परिणाम है। उनका मानना है कि श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपाङ्गनासमूह एवं उनकी मधुरतम लीलाओंमें कोई भेद नहीं है। वे स्वयं ही आस्वादक और आस्वाद बने हैं। पोद्दारजीने अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन विभिन्न श्रेष्ठ साधना पद्धतियोंको आत्मसात कर उनके मनन और चिन्तनके उपरान्त रसाद्वैत दर्शनको व्यक्त किया है। इसमें उनकी निजी साधना और तपस्याके घनीभूत अनुभवोंका आस्वाद भी है। रसाद्वैत सिद्धान्तके द्वारा उन्होंने अद्वैत सिद्धान्तका ही समर्थन किया। अपने आराध्य युगलमें अभेद भाव प्रदर्शित करते हुए उन्होंने कहीं श्रीराधिकाको श्रीकृष्णकी आराधिकाके रूपमें स्वीकार किया है तो कहीं दूसरे स्थानपर उन्हें श्रीकृष्णकी आराध्याके रूपमें भी चित्रित किया है। उन्होंने लीलानायककी समस्त क्रियाओं और उनके लीलाधाममें भी रसकी अनुभूति की है। हमने यह भी पाया है कि उनकी रचनाओंमें उनके भक्त हृदयकी अनुभूतियों और आराध्यके प्रति एकात्मकता और समर्पणका भाव सर्वत्र विद्यमान है। श्यामा-श्यामके प्रेममें रचे ये पद पोद्दारजीको बीसवीं सदीके प्रमुख भक्त कवियोंके बीच महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इस अध्ययनसे हमने यह भी पाया है कि युगल प्रेमके संदर्भमें इनकी दृष्टि उस विशेष प्रसंगका भी स्पर्श करती है जिसका वर्णन पहलेके भक्त कवियोंने संभवतः नहीं किया है। श्रीराधाके प्रेम-वैचित्त्य पर पोद्दारजीकी दृष्टि पड़ना इसी प्रकारके प्रसंगमेंसे एक है। पोद्दारजी राधाजीके भाव साधक रहे और प्रेमकी उत्कृष्टताके कारण प्रियतमके समीप रहनेपर भी उसके न रहनेकी अनुभूतिसे होने वाली पीड़ाको पोद्दारजीने मुखर किया है। श्रीकृष्णके अदर्शनसे श्रीराधामें उत्पन्न विभिन्न भावदशाओंका इनके पदोंमें अद्भुत चित्रण है। श्रीराधिकाको

विशेष स्थान और परमश्रेय समझते हुए पोद्दारजीने अनेक सुमधुर पद उन्हें निवेदित किये हैं। कभी दास्य भाव, कभी सख्य और कभी माधुर्य भावकी व्यंजना लिये इन पदोंमें भक्तके भावोंकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। इनमें कभी भक्तका नारी भाव उपस्थित होता है तो कभी पुरुष भाव। यह बात तो सर्वमान्य है कि पोद्दारजीने इन पदोंकी रचना स्वांत:सुखाय और भक्त हृदयकी अभिव्यक्तिके रूपमें की है, इसलिये ये पद भाषाके समस्त नियमों, राग-रागिनियोंके बन्धन और साहित्यिक सौष्ठवसे शत-प्रतिशत युक्त नहीं है।

पोद्दारजीने कृष्ण भक्तिको मनुष्य जीवनका परम और चरम लक्ष्य तो माना ही है, महाप्रभु वल्लभाचार्यकी भाँति ब्रह्मको सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान मानते हुए भगवान, परमात्मा और ब्रह्मके रूपमें श्रीकृष्णके ही तीन रूपोंको स्वीकार भी किया है। गौड़ीय भक्तोंकी परम्परामें हरिनाम जपकी महत्ता स्वीकार करते हुए इन्होंने भी संकीर्तन पर बल दिया है। गौड़ीय सम्प्रदायके संत महापुरुषोंकी भाँति पोद्दारजीने श्रीराधाको अपनी आराधनाके केन्द्रमें रखा अपने साहित्यमें उनके स्वरूप और उनकी भक्तिपर यथोचित स्थान दिया है। श्रीपोद्दारजीकी यह भी विशेषता है कि उन्होंने राधाके चरित्रको एक शृंगार रसकी नायिकासे ऊपर उठाकर आराध्य कृष्णकी सुख-विधाता माना है। श्रीकृष्ण और श्रीराधाकी एक तत्वता तो उन्हें मान्य है ही।

हमने यह भी माना है कि काव्यशास्त्रके समस्त बन्धनोंमें नहीं बँधनेके बावजूद पोद्दारजीके काव्यका भाव पक्ष अत्यन्त प्रबल है। इन्होंने शृंगार रसको केवल दाम्पत्य रति तक ही सीमित न कर भक्ति, वात्सल्य और सख्य भावोंको भी प्रेरक माना है। शृंगार रसके प्रमुख आलंबन नायक और नायिकामें भी स्वकीया और परकीया नायिकाओंके विभिन्न रूप पोद्दारजीके पदोंमें उल्लिखित हैं। लेकिन जैसा कि मैंने पहले कहा है स्वकीया या परकीया किसी भी नायिकाके चरित्र, लक्षण, अवस्था या प्रेममें किसी प्रकारका स्खलन नहीं आने दिया है पोद्दारजीने। पर पुरुषके प्रति अपने प्रेम और आकर्षणका संकेत करती हुई पोद्दारजीकी परकीया नायिकाएँ भी अपनेमें शालीनता लिये हुई हैं। इसी प्रकार संयोग या विप्रलंभ शृंगारके प्रसंगमें आनन्दमें निमग्न प्रेमी युगलका रमणीय स्वरूप या विरह व्याकुलतामें निमग्न प्रेमीका चित्रण पोद्दारजीकी लेखनीका स्पर्श पा सँवर गयी है।

इस शोधमें हमने यह भी पाया है कि श्रीपोद्दारजीको एकाधिक भाषापर असाधारण अधिकार प्राप्त था। किसी भी भाषाका विधिवत ज्ञान नहीं लेने वाले पोद्दारजीने जब अपने पदोंको व्रजभाषामें लिखा तो वे पद व्रज क्षेत्रमें निवास करने वाले

कतिपय कवियोंकी रचनाओंसे अधिक मधुर और सजीव हो उठे हैं। राधा कृष्णके पारलौकिक प्रेमको व्रजभाषाके साथ ही खड़ी बोलीमें उसी काव्य कुशलतासे प्रस्तुत करना संभवतः पोद्दारजीके ही वशकी बात थी। राजस्थानीका पुट लिये उनके पद हो या फिर खड़ी बोली या व्रजभाषाके सभीमें रस, ओज, प्रसाद एवं माधुर्यका समुचित प्रभाव है। जिस सुगमतासे मुहावरों और लोकोक्तियोंका प्रयोग खड़ी बोलीके पदोंमें हुआ है ठीक उसी प्रकार व्रजभाषाके पदोंमें उनका प्रयोग पदोंको जीवंत कर गया है।

गीतिकाव्यके लक्षणोंसे युक्त पोद्दारजीका सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य मुख्यतः मुक्तक पद शैलीमें है। शायद कृष्ण प्रेम, लीला और प्रकृति चित्रणके लिये यही शैली उपयुक्त भी है। स्वर्गीय संगीताचार्य पण्डित पुलस्कर द्वारा राग-रागिनियोंमें निबद्ध ये पद सर्व साधारण या भक्त पाठकोंके लिये सुगम रूपसे गेय बन गये हैं। पदोंमें शब्द चयन अति कुशलतासे किया गया है जो पदोंको प्राणवान बनाते है। पदोंमें प्रयुक्त शब्द इस तथ्यको उजागर करते हैं कि पोद्दारजीके पास विभिन्न भाषाओंमें शब्दोंका भण्डार व्यापक था। शब्द चयनमें यह उल्लेखनीय है कि उनके शब्द उनकी भावनाओंको व्यक्त करनेमें पूर्ण सक्षम रहे हैं। कोमल भावको व्यक्त करनेके लिये कोमल एवं सरस भाषाका और गम्भीर भावोंके लिये गुरुतर एवं गम्भीर भाषाका प्रयोग किया गया है।

पोद्दारजीके काव्यमें काव्य-विम्बोंका उचित एवं यथार्थपरक सन्निवेश है। भाषा कोई भी हो उनकी पकड़का यह प्रमाण है कि संस्कृतनिष्ठ पदोंमें भी पदावलियोंका सौन्दर्य और भाषाकी प्रांजलता है। कुछ पदोंमें पोद्दारजीने संस्कृतके शब्दोंका अद्‌भुत संयोग स्थापित किया है। भाषाकी गहन विनियोगशीलताने उनके काव्यको एक विशिष्ट स्थान दिया है। यह सब भी तब जब उनका उद्देश्य साहित्य सृजन नहीं वरन् अपने आराध्य श्रीकृष्ण एवं उनकी सहगामिनी श्रीराधाके प्रति अपने हृदयोच्छवासको प्रकट करना मात्र है। अपने सात्विक भावोद्‌गारोंको व्यक्त करनेमें भी जो काव्य सृजन हुआ है वह भी कलागत सौन्दर्यकी श्रेष्ठताको समाये हुए है।

अलंकार काव्यको एक सौन्दर्य प्रदान करते हैं। पोद्दारजीने अपने भक्ति पदोंमें अलंकारोंको ढूँढ़कर स्थान नहीं दिया है। वे तो कथ्यकी अपेक्षा पर सहज ही स्थान पा गये हैं। चेष्टा न करते हुए भी पोद्दारजीकी भक्ति काव्य धारा अलंकारोंसे स्वाभाविक रूपमें अलंकृत हो उठी है। उनके काव्यमें यत्र-तत्र शब्दालंकार विद्यमान है। कृष्ण भक्त कवियोंकी भाँति उनके साहित्यमें भी रूपक, उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा आदि उपस्थित हैं पर अन्य अलंकारों यथा विरोधाभास, सन्देह, श्लेष आदिकी उपस्थिति भी द्रष्टव्य है।

इसी प्रकार छन्दोंकी विविधता और अलंकारोंकी स्वाभाविकतामें पोद्दारजीके काव्य जगत्‌को अधिक सार्थक और अनूठा बना दिया है। डा० पुष्पा भरतियाके शब्दोंमें 'रीतिबद्धता, रीतिसिद्धता और रीतिमुक्तता तीनोंका समन्वय भक्ति क्षेत्रके काव्यमें किसी एक कविमें देखना हो, तो पोद्दारजीका काव्य उसके लिये सर्वोत्तम उदाहरण होगा।'

पोद्दारजी बीसवीं सदीके भक्त कवि हैं पर उनके काव्यकी मौलिकता एवं उच्च भक्ति भावना उन्हें कहीं-न-कहीं भक्ति कालके श्रेष्ठ भक्त कवियों सूरदास, तुलसीदास, हितहरिवंश, रसखान और मीराके समक्ष रखता है। भक्ति और प्रेमका जो स्वरूप परिवेश उन्होंने प्रस्तुत किया है उसकी मूल चेतना मध्ययुगीन है। इसके बावजूद उन्होंने कृष्ण लीला और प्रेमको पवित्रताके साथ, एक नये आदर्शकी स्थापना करते हुए जिस विश्वासपूर्वक भारतीय जनमानसके हृदयमें पुनर्स्थापित किया है उसे आधार मानकर हमने उनकी कृष्ण-भक्ति रचनाओंको आधुनिक कालके कतिपय कृष्ण काव्यके साथ देखनेका प्रयास किया है।

आधुनिक कालका प्रारम्भ ही भारतेन्दुके साथ स्वीकार किया गया है। आधुनिक कालमें जीवनकी मुख्य धाराओं एवं उनकी मान्यताओंमें बदलाव आया था। भारतेन्दु उन धाराओंको अनदेखा नहीं कर पाये थे। लेकिन पोद्दारजीने इस युगमें भी निरपेक्ष भावसे भक्ति साधना करते हुए साहित्य सृजन किया। इनके साहित्यमें अनिर्वचनीय प्रेमको स्थान मिला है। लौकिक प्रेम एवं शृंगार विषयक काव्यको स्थान न देते हुए इन्होंने अपने जीवन, साधना और साहित्य प्रत्येक क्षेत्रमें भगवत् प्रेम एवं नाम जपको महत्व दिया है। इनकी रचनाका संसार विविध लीला रूपों, प्रेमाभक्तिके सूक्ष्म रूप एवं आराधनाके संयोगसे भरा पड़ा है। इनके साहित्यमें भारतेन्दुकी तरह न तो प्रकृतिका स्वतंत्र वर्णन है और न 'विजय वल्लरी'। लेकिन भक्ति पदोंके साथ ही इन्होंने भारतीय जनमानसके गिरते हुए नैतिक मूल्योंका आकलन किया है, इसलिये 'प्रबोध-चेतावनी', 'सनातन धर्मकी गरिमा' एवं 'मानवता' खंडके अन्तर्गत भी पद संकलित है। भक्ति पदोंमें भी पोद्दारजीके काव्यमें विनय भक्ति एवं माधुर्य भक्ति विषयक पदोंकी अधिकता है जिसका भारतेन्दुके भक्ति काव्यमें अपेक्षाकृत अभाव है। इतना ही नहीं विनय भावनाकी विभिन्न दशाओंमें भी भारतेन्दुके पद स्पष्टतः कम हैं। पोद्दारजीने तो विनय-हीन मनुष्यको नर-पशु माना है। विनयशीलताके पक्षमें वे कह उठे है—

जिसमें दया, प्रेम, सेवा, तपका लहराता सिन्धु महान।
अक्षर-हीन भले हो, पर वह है मानव शिक्षित विद्वान॥

लेकिन इसके बावजूद भारतेन्दु और पोद्दारजी दोनों ही सगुणोपासक रहनेकी वजहसे कृष्ण भक्तिमें आकंठ डूबे रहे हैं। दोनोंने कृष्णके वात्सल्य, राधा-कृष्ण संयोग-वियोग आदिका अलौकिक एवं माधुर्यपूर्ण वर्णन किया है। भाषामें जहाँ भारतेन्दु व्रजभाषासे पूर्णरूपसे जुड़े है वहीं पोद्दारजीने व्रजभाषाके साथ-साथ खड़ी बोलीको भी कृष्ण भक्ति काव्यसे जोड़ लिया है। भाषाका आंशिक अन्तर होनेपर भी कृष्ण भक्ति विषयक पदोंमें मौलिकताका लेश मात्र भी अभाव नहीं है। जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के 'उद्धव-शतक' जैसी कोई रचना पोद्दारजीने अवश्य नहीं की परन्तु 'पद-रत्नाकर'के इस प्रकरणसे सम्बन्धित अर्द्धशतकसे कुछ अधिक ही पद है। प्रसंगकी समानताके बावजूद पोद्दारजी द्वारा श्रीराधाके प्रेमवैचित्य प्रसंगको प्रस्तुत करना एक उल्लेखनीय प्रयास है जो उन्हें अन्य समकालीन कवियोंसे अलग रखता है। पोद्दारजी अपने आराध्यको अपनी आध्यात्मिक भावनाओंके वशीभूत आनन्दके क्षणोंमें स्मरण करते हैं इसलिये सत्यनारायण कविरत्नजीसे बिल्कुल अलग वे अपने प्रभुके साथ दैन्य, सख्य, शांत एवं वात्सल्य सभी भावोंसे मिले हैं।

पोद्दारजी अद्‌भुत कोटिके परम भागवत एवं विद्वान् व्यक्ति थे। वे केवल आत्म कल्याणके आकांक्षी न रहकर लोक कल्याणके साधक बन गये थे। आधुनिक कालमें भक्ति काव्यको अपनी समस्त गरिमा और प्रभावके साथ स्थापितकर उन्होंने एक स्तुत्य कार्य सम्पन्न किया है। सेठ गोविन्ददासके विचारोंसे पूर्ण सहमति व्यक्त करते हुए मैं यह उद्धृत करना चाहूँगा कि 'वे भारतीय धर्मके भक्ति मार्गके एक ऐसे भक्त सन्यासी पथिक थे, जिसके भगवद्‌भक्तिनिष्ठ एवं भक्तिरसपूर्ण कार्योंसे भक्तिपथ और सम्प्रदायका प्रवर्तन होता है।' भक्तिकालमें रचित सूर-सागरके पश्चात आधुनिक कालका पद-रत्नाकर हिन्दीकी अमूल्य गीति-निधि है। इस ग्रंथने राधा कृष्णकी लीलाओंको पारलौकिक रूप प्रदान कर भारतीय संस्कृति और समाजके लिये अत्यन्त श्रेयस्कर कार्य किया है। राधा-माधव उभयाश्रयी इस ग्रन्थके पदोंको इस यशस्वी भक्त कविने मानवताके प्रेमका प्रतीक माना है। निःसंदेह आनेवाली पीढ़ी इस धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रेरणाके स्रोतको सूर और तुलसीके समकक्ष आत्मसात् करेगी।

(३)

तीसरा शोध प्रबन्ध श्रीमती कमलेश गग्गड़ने डॉ० उमाकान्तके निर्देशनमें सन् २००२ में महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेरमें प्रस्तुत किया है। इसका विषय है— श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके काव्यमें भक्ति-दर्शन और सांस्कृतिक चेतना। इसका उपसंहार प्रस्तुत करते हुए लिखा है

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार द्वारा रचित समग्र साहित्यके अध्ययन-अन्वेषण एवं मूल्यांकनके पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे इस आर्यभूमिके आधुनिक महर्षि हैं, संत-शिरोमणि तुलसीदासके अंशावतार हैं और परम वैष्णव भक्त सूरदासकी प्रतिच्छाया हैं। पोद्दारजीके काव्यके गहन अध्ययनसे यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने वैष्णवभक्ति काव्यको एक सर्वथा नवीन एवं विशिष्ट आयाम प्रदान किया है। जहाँ आधुनिक काव्यधारामें छायावादके नामपर वैयक्तिक प्रेम और आशा-निराशाके भावोंका आरोपण हुआ है, व्यक्तिगत वेदनाको काव्यका प्रतिपाद्य बनाया गया है तथा दूसरी ओर प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी काव्य संरचनाकारोंने वर्ग संघर्ष, मजदूर आन्दोलन तथा क्रान्तिकी अभिव्यक्ति की है या फिर वैयक्तिक कुण्ठाओं, यौन आकांक्षाओंको चित्रित करनेका प्रयास किया है वहाँ भाईजीने अपनी भक्ति पूरित काव्य सरिता प्रवाहित कर अध्यात्म और दर्शन, सदाचार और शील तथा प्रेमाभक्ति और अनन्य भागवत भावका प्रचार-प्रसार करके भारतीय जनमानसका परमोत्थान किया है। पोद्दारजीका व्यक्तित्व एक ऐसा निर्झर युक्त भूधर है, जिसमें एक ओर तो राधा माधवके महारासकी भाव-धारा प्रवाहित हुई है तो दूसरी ओर धर्म, दर्शन और अध्यात्मकी त्रिवेणीका निनाद सुनाई देता है। जब ये सब धाराएँ मिलकर वेगसे प्रवाहित होती है तो उनकी रसवन्ती धारा एकमेक होकर भक्तों और श्रद्धालुओंको रससे आप्लावित कर देती है।

पोद्दारजीके साहित्यमें जीवन दर्शनका स्वरूप' शीर्षक अध्यायके अन्तर्गत उनके दार्शनिक विचारोंका विस्तारसे विवेचन हुआ है। उन्होंने अपने दार्शनिक मतोंकी भावपूर्ण व्याख्या 'प्रेम तत्त्व एवं गोपी प्रेमका महत्व' शीर्षक प्रकरण (पद-रत्नाकर) में विस्तारसे की है। वस्तुत: उनका रसाद्वैत दर्शन भारतीय भक्ति साहित्यको उनकी विशिष्ट देन कहा जा सकता है। उनके दर्शनपर प्रेमाभक्तिका प्रभुत्व है। 'गीता चिन्तन' में भी उन्होंने कहा है कि 'अपनेको और भगवान्‌को यथार्थ रूपमें जाननेके बाद ही यथार्थ प्रेम होता है, परन्तु यथार्थ रूपसे जानना भी प्रेमके बिना संभव नहीं। इस ज्ञान और प्रेममें परस्पर साध्य-साधन सम्बन्ध है....... उसी प्रेमको भक्तोंने रसाद्वैत कहा है।'

इसी प्रकार भारतीय संस्कृतिके आधारभूत तत्त्वोंपर भी उन्होंने सारगर्भित विचार ही प्रकट नहीं किए अपितु उन सांस्कृतिक उच्चादर्शोंकी प्रतिष्ठाके प्रति प्रबल आग्रह व्यक्त किया है। भाईजीने वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ चतुष्टय, नारीकी महत्ता एवं अपने मानवतावादी दृष्टिकोणको लोक मंगल व विश्व बन्धुत्वकी भावनाके परिप्रेक्ष्यमें चित्रित किया है। उन्होंने चिरन्तन जीवन मूल्यों यथा सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, ममता, करुणा, परोपकार, अतिथि सेवा एवं गो-रक्षाके प्रति भारतीयोंको जागरूक किया है।

आचरणकी पवित्रता, धर्म और अध्यात्मका अनुचिन्तन उनके काव्य धरातलका मुख्याधार रहा है।

पोद्दारजीकी काव्य संरचनामें भक्ति, दर्शन और संस्कृतिकी त्रिवेणीका संगम है। वे इस भोगवादी संस्कृतिके मरुस्थलमें भटकनेवाले मानवको मृगतृष्णासे विरत करनेकी चेष्टामें आजीवन लगे रहे। वे स्वयं तप, त्याग और संयमकी प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने अपने ओजस्वी उद्‌बोधनोंसे लाखों करोड़ों भारतीयोंको हमारी शाश्वत आर्य संस्कृतिकी ओर अभिमुख किया था। पोद्दारजीके उद्‌गार न केवल राष्ट्रीय परिवेशमें प्रभावी रहे हैं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय जगतमें भी वे देश-विदेशके लोगों हेतु प्रेरणा स्तम्भ बने। 'पद-रत्नाकर'के अनेक पदोंमें उन्होंने विशुद्ध भारतीयताकी रक्षाका आह्वान किया है। इक्कीसवीं सदीकी युवापीढ़ीको पश्चिमी अन्धानुकरणकी ओर बढ़ते रहनेसे रोकनेके लिये पोद्दारजीका उद्‌बोधक साहित्य निश्चय ही अन्यतम है।

हिन्दी भाषाके प्रति अपूर्व निष्ठा

पोद्दारजी जिन दिनों कलकत्ता प्रवासमें थे उन दिनों हिन्दीके मूर्धन्य साहित्यकारोंके सम्पर्कमें आये। सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, गोविन्दनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, पण्डित झाबरमल शर्मा आदिके सम्पर्क एवं सान्निध्यसे पोद्दारजीकी साहित्यिक रुचिको प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्होंने कलकत्तामें रहते हुए अनेक लेख लिखे जो तत्कालीन मर्यादा, सरस्वती, नवनीत आदि पत्रिकाओंमें प्रकाशित और प्रशंसित हुए। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति उनकी श्रद्धा और प्रेमने उन्हें हिन्दी सेवाकी ओर अग्रसर किया। गीताप्रेस, गोरखपुरकी स्थापनाके पश्चात् उनके सम्पादनमें कल्याण और विविध धार्मिक साहित्य प्रकाशित हुआ जो न केवल हिन्दी साहित्य अपितु समूचे भारतीय वाङ्मयको उनकी अपूर्व देन कहा जा सकता है। पोद्दारजीने अकेले ही बिना किसी प्रचारके इतना महान् और भागीरथ कार्य किया है जो आश्चर्यजनक है। उन्होंने सर्वोत्तम साहित्यको सरल-सुबोध भाषामें और शुद्ध रूपमें लिखकर-लिखवाकर प्रकाशित करवाया, जिससे हिन्दी भाषा अत्यन्त समृद्ध हुई। इस अनुपम साहित्यको पढ़कर लाखों लोगोंका मन पवित्र हुआ, विचार प्रबुद्ध हुए और ज्ञान परिसर विस्तीर्ण हुआ है। इस संदर्भमें राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकरने कहा है कि—'वे प्राचीन भारतके ज्ञानको प्राचीन (संस्कृत) अथवा आधुनिक भारतकी भाषा (हिन्दी)में फैलाते थे। श्रीपोद्दारजीने भारतकी सारी परम्पराको हिन्दीमें लाकर इस विशाल जनसमूहके लिये सुलभ कर

दिया। जिन प्राचीन पुराणों और ग्रन्थोंका जनता पहले केवल नामभर सुना करती थी, वे ग्रन्थ अब उसके हाथमें हैं और वे हिन्दीमें हैं, जिस भाषापर जनताका स्वाभाविक अधिकार है। यह एक ऐसी सेवा है कि जिसका मूल्य आसानीसे आंका नहीं जा सकता। वे भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार थे।'

पोद्दारजीकी अनुपम काव्य साधना

पोद्दारजी रस मर्मज्ञ और मनीषी कवि थे। उनकी काव्य साधना आत्मचेता ऋषिकी साधनाका सारस्वत प्रसाद कहा जा सकता है। भाईजीने अपने जीवनमें चिरन्तन महत्वका जितना विस्तृत कार्य किया है, वह सामान्य रूपसे एक नहीं अनेक जीवनमें भी संभव नहीं है; तभी तो विद्वानोंने उनकी गणना, सूर तुलसी आदिसे की है। उनके रचित कुछ पद तो उन्हें हिन्दी साहित्यके शिखरके महाकवियोंके समकक्ष प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ हैं। उन्होंने ये पद साहित्यिक संरचनाकी दृष्टिसे नहीं अपितु एक भक्तके अन्तरमनकी सहज अभिव्यक्तियोंके रूपमें रचे। आज वे साहित्यिक महत्त्वकी उदात्त कृतियाँ बन गयी हैं। भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे उनके पद किसी भी महाकविसे तुलनीय हैं। हिन्दी साहित्यमें 'पद-रत्नाकर' सम्पूर्ण भक्ति शास्त्रका एक अनूठा काव्य ग्रन्थ है। डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तवका मत है कि 'अधिकांशत: व्रजभाषा एवं खड़ी बोलीमें रचित तथा कहीं-कहीं राजस्थानी भाषाका पुट लिये हुए 'पद-रत्नाकर'के पद नाना राग-रागिनियोंमें सहज ही गेय हैं। सच बात तो यह है कि भक्त हृदयकी प्रेम माधुरी सहज ही दिव्य संगीतकी स्रोतस्विनी बन गयी है। साहित्यिक सौष्ठवसे कहीं अधिक, आध्यात्मिक औदात्तकी महिमा इन पदोंकी अप्रतिम विशेषता है। 'हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि नैष्ठिक भक्त प्रवर पोद्दारजीका यह 'पद-रत्नाकर' सच्चे अर्थोंमें सहृदय भक्तों, रसिक पाठकों, प्रबुद्ध साधकों तथा संगीत प्रेमियोंके लिये समान रूपसे लम्बे कालतक प्रेरणादायी सिद्ध होगा।'। भाईजीकी राष्ट्रभाषाके प्रति निष्ठा और उनकी काव्य संरचनाकी व्यापकताको देखकर सुविख्यात कवि डा० हरिवंशराय बच्चनने उन्हें 'हिन्दी साहित्य गगनका देदीप्यमान नक्षत्र कह दिया है।' इस नास्तिकताके युगमें आम जनताके लिये उन्हींकी बोल-चालकी सहज भाषामें जो अमृतवाणी मुखरित की है उससे जन समुदाय एवं साहित्य प्रेमी चिरकालतक ऋणी रहेंगे।

पोद्दार साहित्यकी मूल चेतना

आलोच्य शोध प्रबन्धमें भाईजीकी विराट साधनाको भक्ति और दर्शनके

परिप्रेक्ष्यमें चित्रित करनेका यत्न किया गया है। यह शताधिक रूपोंमें देखा जा चुका है कि श्रीराधा माधव भाईजीके हृदयकी धड़कन रही है; उनकी प्रत्येक श्वास प्रश्वास राधा-माधवमय हो चुकी थी। उनकी धमनियोंमें प्रवाहित रक्त संचरण प्रतिपल भगवद्नामका स्मरण करने हेतु उत्तेजित करता रहता था। स्वयं उन्हींके शब्दोंमें द्रष्टव्य है—

'कृष्ण उठत, कृष्ण चलत, कृष्ण शाम भोर है।
कृष्ण बुद्धि, कृष्ण चित्त, कृष्ण मन विभोर है॥'

× × × ×

मेरे द्वारा बोल रहे हैं, केवल मेरे वे भगवान।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं, वे मधुर मुरली की तान॥

वास्तवमें उक्त विचार केवल शाब्दिक वाग्जाल नहीं अपितु आत्मासे निकली ध्वनि है। उनकी भक्ति साधना और साहित्य साधनामें मधुर रसकी उज्जवल युगल मूर्ति राधा-कृष्णका ध्यान, मनन, तत्त्व चिन्तन एवं भाव विश्लेषण निष्ठापूर्वक हुआ है। श्रीराधा उनकी परमाराध्या रही है। 'पद-रत्नाकर'के अतिरिक्त राधाष्टमी महोत्सवोंके पावन पर्व पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किये और भाव विभोर होकर जो पद गाये हैं उससे हिन्दी जगतको राधा विषयक श्रेष्ठ और सारभूत सामग्री प्राप्त हुई है। पोद्दारजीने अपने विशाल ग्रन्थ 'राधा माधव चिन्तन'में स्पष्ट कहा है—'जिनकी दिव्यातिदिव्य पद रजकण ही मेरा परमाश्रय है उन श्रीराधाजीके सम्बन्धमें कुछ शब्द उनकी कृपासे ही लिख रहा हूँ। जिन श्रीराधाजीकी अयाचित कृपासे मुझे उनका जो कुछ परिचय मिला है और जिन्होंने अपने महान् अनुग्रह दानसे मुझ पतित पामरको अपनाकर कृतार्थ किया है, वे अचिन्त्य महिमामें श्रीराधाजी न तो विलासमयी रमणी है, न उनका उत्तरोत्तर क्रम विकास हुआ है, न वे कवि हृदय कल्पना है और न उनमें किसी प्रकारका गुण रूप सौन्दर्याभिमान ही है।'

पोद्दारजीके ये विचार स्पष्टत: प्रतिपादित करते हैं कि उनके काव्यकी मूल चेतना राधा-माधवके अनुचिन्तनमें समाहित है। उन्होंने महारागात्मक भावाद्वैतकी संकल्पना और सृष्टि करके श्रीराधा-माधवको क्रमश: आदि पुरुष और नारीकी संज्ञा दी है। उन्होंने अनेकश: सिद्ध किया है कि राधा-कृष्ण दोनों एक, और अभिन्न है-वैसे ही जैसे अग्निसे ज्वाला, और मृगमद तथा उसकी गन्ध अभिन्न हैं। पोद्दारजीने कविराज श्रीकृष्णदासकी भाँति काम और प्रेमका विस्तारसे अन्तर बताते हुए कहा है कि कामसे अध:पतन होता है, प्रेमसे दुर्लभ दिव्य भगवत्रसका आस्वादन होता है। रतिसे प्रणय,

प्रणयसे स्नेह, स्नेहसे मान, मानसे राग, रागसे अनुराग, अनुरागसे भाव और भावसे महाभाव क्रमशः परिशुद्ध होकर प्रस्फुटित होता है। यही महाभाव राधा प्रेम है। श्रीपोद्दारजीने भी स्पष्ट किया है कि इस राधा विषयक स्वानुभूतिसे व्यामोह सर्वथा मिट जाता है; फलतः श्रीराधा-माधव ही उसके सर्वस्व होकर उसमें बस जाते हैं और उसे अपना स्वेच्छा संचालित लीलायंत्र बनाकर धन्य कर देते हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भाईजीकी रसवंती लेखनीसे निःसृत श्रीराधा-माधव सम्बन्धी-साहित्य सरितामें अवगाहन कर प्रत्येक सहृदय और भावुक व्यक्ति स्वयं भी राधा-महाभावमें लीन होकर महारागात्मक भावाद्वैतकी स्थितिको प्राप्त कर लेता है।

लोकमंगलकी सिद्धि एवं भगवन्नाम स्मरणका अमर संदेश

पोद्दारजी प्रणीत काव्य ग्रन्थोंमें राधा-माधवकी भक्ति तो प्रधान है ही पर आनुषंगिक रूपसे उन्होंने 'पद-रत्नाकर' में लोक मंगलकी सिद्धिका परम लक्ष्य भी उजागर किया है। मानव समाज तभी सुखी रह सकता है जब उसके प्रत्येक वर्ग, समुदाय एवं व्यक्ति-व्यक्तिमें सर्वमंगलकी भावना उद्‌भूत हो। 'पदरत्नाकर'के उत्तर खण्डमें उन्होंने 'प्रबोध चेतावनी', 'व्यवहार परमार्थ', 'सनातन धर्मकी महिमा', 'महापुरुष वन्दना', 'मानवता' और 'प्रकीर्ण' शीर्षक पदोंमें जिन मानवीय भावों और विचारोंकी अभिव्यक्ति की है, उनमें लोकमंगलकी सिद्धि ही निहित है। आलोच्य पदोंमें उनकी मानवतावादी दृष्टि, राष्ट्रीय प्रेम एवं विश्व बन्धुत्वकी भावना उन्हें गौतम, गाँधी और ईसा मसीहकी श्रेणीमें पंक्तिबद्ध करती है। पोद्दारजीकी लोकमंगलकी साधना पोद्दार साहित्यकी चरम उपलब्धि कही जा सकती है।

भाईजीने अपने पदोंमें निरंतर भगवन्नामकी महिमाका गान करके प्राणीमात्रको प्रभुस्मरणका अमर संदेश दिया है। उनकी यह उद्‌घोषणा दृष्टव्य है—

'बन्धुगणों! मिल कहो प्रेमसे, यदुपति ब्रजपति श्यामाश्याम,
मुदित चित्त से घोष करो पुनि, पतित पावन राधेश्याम॥'

नाम स्मरणकी महिमाका बखान मध्यकालीन संतोंने भी किया है। तुलसीने 'भरोसो नामको भारी' कहकर भगवन्नामकी महिमा ही प्रतिष्ठित की थी। भाईजीने भी राधेश्याम और सीतारामके नामका जाप करनेका आह्वान करते हुए इसे दारुण शोक एवं विपत्तिके नाशका साधन बताया है। नाम स्मरणसे शिव, सनकादि नारद-शारदादि तथा विभीषण, हनुमान, ध्रुव आदिके दारूण दुख मिटे हैं। अतःभगवन्नामके स्मरणसे ही सभी कष्टोंका हरण हो सकता है। नामकी महिमा अमित है, इसलिये रामसे भी बड़ा उसका नाम स्मरण है; उसीसे भक्ति और वैराग्यकी जागृति होती है जो सर्वसुखका

साधन है। इस प्रकार श्रीपोद्दारजीने प्राणीमात्रको प्रभु स्मरणकी ओर प्रेरित किया है। उनकी काव्य साधनाका चरम उद्देश्य नाम स्मरण है।

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके काव्यका समग्र मूल्यांकन करनेसे यही प्रतिपादित होता है कि उनका कृत्तित्व युग-युगान्तर तक साधकोंको भक्ति पथकी ओर अग्रसर करता रहेगा। उनका विस्तृत काव्य वर्तमान एवं आगामी युगके साहित्यकारोंमें एक नई सम्भावनाको उदय करनेमें भी सफल है जिसमें भक्ति तत्वमय साहित्यके लेखनकी अन्तःप्रेरणा विद्यमान है। भाईजी प्रणीत काव्य आजके भौतिकवादी युगमें सात्विक विचारोंके उदय हेतु पठन-पाठन और आस्वादनके योग्य है। निश्चय ही साहित्य और संस्कृति के उत्थान हेतु पोद्दारजीने जिस महायज्ञका समारम्भ किया, यदि उसमें हमारी पावन आहूतियाँ दी जाती रहेंगी तो पोद्दार साहित्यकी सृजनात्मक सार्थकता स्वतः सिद्ध हो सकेगी। पोद्दारजी कवियोंके कवि थे, उनकी रचनाओंमें भक्तों, तत्त्वचिन्तकों, संस्कृतिके उपासकों और समाज सेवकोंको निरन्तर मार्गदर्शन करनेवाले प्रतिमान निहित हैं। समग्रतः रचनाधर्मिताकी दृष्टिसे पोद्दारजीको बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्वका धनी कहा जा सकता है। 'पद-रत्नाकर' की तुलनामें भक्तिकालका शीर्ष ग्रन्थ 'सूरसागर' ही दृष्टिगत होता है। वे सूर-तुलसीकी काव्य गरिमा, मीराके माधुर्य भाव, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीके स्वदेश रूपी संजीवनी शक्तिका अवदान प्रदान करनेके कारण अभिवंदनीय हैं। हिन्दी साहित्यके स्वर्णयुग (भक्तिकाल)की भक्ति काव्य मंदाकिनीमें पोद्दारजीकी रचनाधाराका समाहार सर्वथा गौरवास्पद एवं अभिनंदनीय है। वस्तुतः इसी परिप्रेक्ष्यमें पोद्दार साहित्यकी सृजनात्मक सार्थकता एवं लोगमंगलकारी संप्रेरक संदेशकी दिशामें निरंतर संधान एवं अनुसंधान वांछनीय है।

----×----